Chapter-7

पर्व सप्तम

-: श्री आत्मानंदजी महाराजजीके साहित्यका विश्वस्तरीय प्रभाव :-

मंगलाचरण--

प्रस्ताविक-मेघ और महात्मा--जन जीवनोपयोगी सिद्धान्त-तीन बीसियोका जीवन--एकमें अनेक अनेकमें एक--प्राचीन्ताके प्रेमी

आचार्यश्रीका मिशन--समाजोद्धार और राष्ट्रीय एकता, मानव कल्याण एव विश्व बधुत्व--

जैन समाज (जगत) पर ऋण-- धार्मिक क्षेत्रान्तर्गत--(सद्धर्म स्वरूप वर्णन, जिनप्रतिमा-जिनमदिर स्थापना एव जीर्णोद्धार, जिनशासनकी कायापलट, विश्वस्तरीय प्रचार-प्रसारका गुजन)--दार्शनिक रूपमे--(जैन दर्शनकी उत्कृष्टता और जीवनमे आवश्यकता, अनेकान्तवाद और स्याद्वादका प्रभाव, जैनेतरो पर विशिष्ट प्रभाव)-सामाजिक क्षेत्रान्तर्गत (करुणावत भीड़भजक, सत्य सुधारक महारथी, अनेक रूढियो-मतभेदोको दूर करके सामाजिक एकताके कर्णधार) व्यावहारिक परिवेशमे (व्यावहारिक परिपाटियोमे सुधार--धार्मिक रूढि-परपरामे गीतार्थानुरूप एव युगानुरूप परिवर्तन, चतुर्विध सघकी व्यवस्थाकी शुद्धि--आर्थिक परामर्श (गृहस्थकी आजिविकाके लिए मार्गदर्शन, न्याय सम्पन्न वैभवका परामर्श, साधर्मिक वात्सल्य एव विश्व बधुत्वकी भावनाका समाजको परिचय)-- **शैक्षणिक विषयक** (समाजकी संस्कारिता और धार्मिकताकी रीढ, शिक्षागुटी-सजिवनी बूटी, अध्ययन-अद्वितीय आर्ट, ज्ञानभंडार-पुस्तकालयादिकी स्थापना और जीर्णोद्धार)-- त्रिविध साहित्यिक सेवाये--सरक्षण, समार्जन, सवर्द्धन-वैविध्यपूर्ण वाड्मय निर्माणके प्रयोजन--

ऐतिहासिकता पर सर्चलाइट--

निष्कर्ष--

शिवमस्तु सर्व जगतः

पर्व सप्तम्

श्री आत्मानंदजी महाराजजीके साहित्यका विश्वस्तरीय प्रभाव

'गोभिः प्रबोधयति विश्वशेषमेतत्,
सूरे ! त्वयि स्फुरिततेजसि लोकबन्धो !
मुष्यन्त एव भविनो घनकर्मबन्धे -
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥"

प्रचड ग्रीष्मकी भयकर अग्नि ज्वालाओसे तप्त प्रकृतिकी प्रशान्तता, हिमगिरि शृगसे उमड-घुमडकर आनेवाली मेघावलिसे बरसती बौछारोमे समाहित है । वैसे ही विधिके विधान और प्रकृतिकी प्रेरणाको अगम्यताके स्वरूपको कथित करनेवाले पुण्यात्माओके अमृत सिचन सासारिक मोहकी मदहोशीमे या बेहोशीमे चैतन्यका सचार करते है ।

घनघोर मेघसे बरसता बरखाका जल अभेद्य भूमिको भेदकर, सुषुप्त धरा पर जीवन सचार करते हुए सस्कार बिना-उज्जड-धरतीको हरियाली रूप साडीसे सजाकर नवपल्लवित बसत-सी प्रमुदित बनाता है, नदी-तालाब-सरोवरादिको छलछलाता है, और कोरी किताब जैसे शून्य आसमानको इन्द्र-धनुषी-आभाकी सजावट देकर शोभायमान बनाता हैं । जल-थल-नभ-सर्वत्र ही प्रसन्नताकी प्रभावना करनेवाले, सर्वदा अर्पणधर्मी, घटाटोप मेघ–न दिन देखतें, न रात–कायाको निथार निथारकर आठो याम बरसते ही रहते है-मानो उन्होने प्रण न लें रखा हो, कि स्वल्प–समयमे–ही सर्वत्र, सर्वकी–अवनिसे अबर पर्यंतकी–सपूर्णतया कायापलट कर देनी है । कलका क्या विश्वास!? अतत उन्हे तो अधिकतम उपकारकी तमन्नाको पूर्ण करते करते अनतकाल-प्रवाहमे समा जाना है, और अपने पीछे छोड जाना है, वनोपवनोंको बहलानेवाली रगरगीली मौसमे, आह्लाद और पुलकितताके पुलिदे ।

वैसे ही विचक्षण और विलक्षण विभूतियाँ भी आध्यात्मिक प्रेरणाके पुण्यसदेशको प्रसारने हेतु पृथ्वीतल पर पदार्पण करती हैं । **'शिवमस्तु सर्व जगतः'**के भाव लहराते हुए क्षमा-नम्रता-सरलता-निर्लोभतादिके जयकारोके गुजारवसे जन समाजके जीवनोद्यानको मुखरित करके, मानवभवके साफल्यको समाहित करनेवाली आराधनामय लताकुजोको, अनेकविध पुण्यपुष्पोसे सजानेकी कर्मठता रूप, स्वजीवनसे अधिकाधिकतम परोपकार करते करते आत्मीय पुण्यप्रभाको प्रसारित करके, अनादि-अनतकालीन स्वरूपवाले ससार प्रवाहमे अतर्धान हो जाती है। रह जाती है केवल उन पुष्पोकी सुवास, उस अस्ताचलके सूर्यकी आभा ।

मेघ और महात्मा–दोनो समस्वभावी-परार्थहेतु प्राणोत्सर्ग करनेवाले नयनगोखसे अमृतधारा बरसानेवाले, अन्यके दिलमे सजीवनीके सारतत्त्वको समा देनेवाले आधिभौतिक और आध्यात्मिक वैभवप्रदाता, श्री और सौदर्यके स्रोत-विद्युल्लताकी चमक और श्रुतभास्करकी दमकसे सर्वत्र प्रभाव, प्रताप, प्रभविष्णुताके प्रवर्तक-मुमूर्षुमे जिजीविषा और दीन-हीनमे जिगीषाके प्रकटकर्ता होते है । विरल विभूति–पुण्यवान महात्मा–धर्म, समाज, देश, राष्ट्र और विश्वमे ऐहिक एव पारलौकिक सुखास्वादके अनुभव कराते हुए विद्या और वैराग्यको उज्जवल करते है । इस पर भी जैन साधुका विशुद्ध वैराग्य–मोमके दातसे लोहेके चने चबाने सदृश ! अत ऐसी उत्कट और उच्चादर्शमय साधुता ही जैन साधुको विश्वके किसीभी धर्मके साधुसे परमोत्कृष्ट रूपमे प्रदर्शित करती है। उनका वैराग्य वासित व्यक्तित्व, विराट महार्णवके मोती-प्रापक मृत्युजयका अहसास दिलाता है । जैन साधुके तप-त्याग, वैराग्य-विद्वत्ता, परके प्रति अप्रतिम कोमलता और स्वकर्मयुद्धमे पराकाष्ठाकी कठोरता, जीव-मात्रके प्रति हार्दिक प्रेम और सहानुभूति आदि आकर्षक गुणोके सगमने अनेकानेक जैनेतर समाजको भी आकर्षित किया है, मानो उनके भुवनमोहक स्वभाव स्वरूप रेशमके धागेके बधनोमे उन्हे जकड न रखा हो ।

जन जीवनोपयोगी सिद्धान्त--जैन सिद्धान्तोका, आचार-विचारोका, जनजीवनोपयोगी एव मगलमय और आत्मकल्याणकारी **प्रतिबोध-इतिहासमें अखड रूपसे प्रवहमान होता रहा है । इन्हीं तथ्योको 'श्री आत्मानंद जन्म शताब्दि स्मारक ग्रन्थ'मे** प्रस्तुत किया गया है -

"The Jainism occupies an important place among the ancient religious of the world. Its philosophical tenets, ethical rules and theories of logic have a peculiar aspect of their own, which speak its antiquity and universality. In theory as well as in practise, Janism maintains a broad angle of vision and embraces in its fold all the living creatures desiring to attain emancipation It lays down rules for the upliftment of all the living beings from the smallest insects down to the highly developed man. For the plain fact is that the gospel of Bhagwan Mahavira was expounded equally for all people without any distinction of caste or creed. In this sense Jainism can well claim to become a Universal religion. Its massage of "Ahinsa Parmodharm" (non violence) is a recognition of Universal brotherhood of not only man but also of all living creatures...

Jains have a philosophy of their own, which can solve all the knotty problems of this world more clearly than any other philosophy. This philosophy can be followed and prectised at all times, at all places and under all circumstances, by all sorts of people, high or law, literate or illiterate..... .. Almost all the Jain Shastras bear testimony to the fact, That Jainism was universally practised by all kinds of people--- The Aryans and the Non Aryans...... All this above facts go to prove that Jainism is nothing but a Universal religion" [2]

यहाँ हमे अनुभूत होता है कि प्राचीनकालमे या अर्वाचीनकालमे उत्तम साहित्यकार साधुओंकी समाजसेवाने जैनधर्मको जीवत-जागृत और ज्वलत बनाये रखा है । उस परम्परामे एक कड़ी बनकर युक्त होनेवाले--साहित्यकार, साधु और समाजसेवी--त्रिवेणी सगमको प्राप्त और मानवताकी उच्च श्रेणि पर स्थित आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानद सुरीश्वरजीम द्वारा विश्वको अनेकविध सेवाये--सदाचार और चारित्रके विद्वत्तापूर्ण सशोधन, स्पष्टीकरण और समर्थन रूपमे--प्र । हुई है ।

निरामय समष्टिका स्वप्न-- **"कीड़ा जरा सा, और पत्थरमें दर करें !**

इन्सान क्यों न दिले दिलबरमें घर करें !?

इस विचार-कर्णिकाको प्रसारित करनेवाला केवल तीन बीसियोका--प्रगतिकी पराकाष्ठाको प्राप्त--जीवन, **प्रथममें आत्माराम, द्वितीयमें सत आत्मारामजी म. और तृतीयमें श्रेष्ठ संविज्ञ साधु 'आनंदविजय'से सुरीश्वर पदासीन श्री आत्मानंदजी (श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी) म. सा.।** अनेक प्रत्यवायोके प्रतिरोध करके सच्ची आत्मश्रद्धाके मधुर फल प्राप्त उनका जीवन था, जिससे अनुभूत होते है--अखड-वज्राग-ब्रह्मचर्य पालनेसे, कदम कदम पर चमत्कार सर्जन कर्णगोचर होता है,पाषाणमे भी पुष्पोको पैदा करनेवाली-पुरुषार्थी-प्रचड साधुताका निर्घोष दृष्टिगोचर होती है, भीरु-निर्माल्य-और आडम्बर युक्त साधुताके उस युगमे महान-त्यागी-सत्यवीर और सम्यक् दृष्टि जोगधरकी आत्मिक साधुता । जिसके सबलसे आध्यात्मिक दारिद्र्यको दूर करनेवाली धार्मिकताकी उदार सखावत हठाग्रही-एकान्तवादी-दिलोदिमागको पलट देनेवाला सर्व समन्वयवादी अनेकान्तवादका अभ्युदय और अन्यकी समुन्नतिमे असूयादि छिद्रान्वेषी भावसे परदोष प्रकाशक-तेजोद्वेषिताको जलाजलि देनेवाल सहानुभूतिपूर्ण, जन जनके आत्मकल्याणकी वृत्ति-प्रवृत्ति आदि द्वारा जैनधर्मके दो महान और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तके--जीवमात्रके प्रति त्रिविध त्रिविध सद्भावक अहिंसा और अन्य धर्मके प्रति त्रिविध त्रिविध सद्भावक अनेकान्तवादके--आचरणकर्ता, परमोपकारी, अवधू आचार्य प्रवर श्रीआत्मानदजीम सा ने जडवादमे डूबे जन-जीवनके उद्धार हेतु

कल्याणमयी बीनकी स्वरलहरी पर झूमनेवाले जैनधर्माधारित सैद्धान्तिक साहित्यको झकृत किया है. तो प्रवचनोमें बहनेवाले कर्मनिर्जराके अनेकविध प्रवाहोंसे, शून्य-जड़वादियोंकी आत्मिक धराको सिंचन करते हुए उन्हें नव पल्लवित किया । "Swami Atmaramji Maharaj was a Sage and Seer He could see through his penetrative eyes, the danger ahead. His preachings created a revolution in the community and generated vital energy for many a useful work. His efforts led to the resuscitation of Jain religion, art and literature about which very little was known before him "[3]

<u>एकमे अनेक-अनेकमे एक</u>–उनका एकमे अनेक और अनेकमे एक की तासीरवाला भव्य-विशद-वैविध्यपूर्ण साहित्य शोभनीय बन पडा है । उसमे अतर्निहित उनके व्यक्तित्वके भिन्न-भिन्न स्वरूप दर्शनसे पाठकगण आश्चर्यान्वित हो जाते है । जैसे-कभी अनुभूत होती है साहसिकता तो कभी शासकता, कभी तार्किकता और कभी तात्त्विकता, कभी कठोर सैद्धान्तिकता और कभी काव्यकी कमनीय सौदर्यता, कभी अहिसा हेतु निर्भीक सहनशीलता तो कभी अन्याय विरुद्ध सघर्ष, कभी भारतीय सास्कृतिक चेतनाके लिए रूढि परम्पराके विरुद्ध बुलद वाक्धाराका प्रवाह और कभी जन साधारणकी अज्ञानताके लिए आक्रोशयुक्त अभिव्यक्ति, कही अध्यात्मकी गूज तो कही फकीरीकी आह्लेक, कही विभाजित मानवताको एक जजीरमे बाधनेवाली अनेकान्तिक दार्शनिकता तो कही प्रचंड-प्रतापी-जातपाँतसे निर्मुक्त स्वैरविहारी-स्वतत्र विचारधारा, कही विकसित वैसम्ययुक्त योगका अधिकार और कही वाणीके सामर्थ्यसे सत्यकी स्थापनाकी ललक, कहीं प्राचीन-प्रभाविक पूर्वाचार्योकी आभाका अवधार दर्शित होता हैं, तो कही नूतन अन्वेक्षणोमे वेष्टित अनेक सिद्धान्तोके सरक्षणकर्ताकी अर्वाचीनता-विचक्षण-तीक्ष्ण दूरदेशीता प्रदर्शित होती है ।

<u>जनसमाजको लाभ</u>-इसके अतिरिक्त उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आनेवाले दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी- थियोसोफिस्ट-वेदान्ती-आर्यसमाजी-ब्रह्मसमाजी मुस्लिम-शीख-ईसाई आदि किसी भी धर्म-जाति-पथ-कौम-देश या राष्ट्रका व्यक्ति हो, अपने मनकी अनेकविध बौद्धिक-तार्किक-शास्त्रीय-आध्यात्मिक-धार्मिक-नैतिक-आर्थिक-सासारिक विषयक शका-सशय-समस्याओंका सतोषप्रद-मनभावन समाधान पाकर निहाल हो जाता था । जगली भील-डाकू हो या अनपढ आहिर, साहित्यका शिरताज हो या सल्तनतका–गुरुदेव सभीको समान रूपसे प्रेमका प्याला पीलाकर तृप्त करते थे, स्नेहकी सरवाणीमे स्नान करवाकर शात एव शुद्ध बनाते थे । परिणामत इन हृदयस्पर्शी कल्याण कामनाके भावोसे सबके दिल बाग-बाग हो जाते थे । विशेष रूपमे हिन्दु-जैन-बौद्ध धर्मोके तात्त्विक भेदोको निरूपित करनेके साथ ही साथ अनेकान्तके सहारे उनकी परस्परकी विसवादिताको समन्वयमे पलटनेके अद्भूत मार्गको प्रशस्त करनेवाले समर्थ सुरीश्वरजी जन-समाजको बुलदीका बिगुल बजाकर एकताकी शक्तिको समझाकर, मानवमात्रको मुक्तिमार्गके पथिक बननेका आह्वान करते है । इसीमें ही उनके हृदयकी मानव-मानव प्रति अनुकपाके दर्शन होते है । "वसुधैव कुटुम्बकम"की छलकती भावना दृष्टव्य हैं -

> **"यह मेरा देश है, यह तुम्हारा–विचार,**
> **संकुचित हृदयवाले व्यक्तियोंके होते हैं ।**
> **उदारचेताओंके लिए सारा विश्व ही एक कुटुम्ब है ।"** -

श्री शशिभूषण शास्त्रीके विचारोंमे - "न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.का जीवन-उनके विचार तथा आचरण बहुत उच्च प्रकारके दिखाई देते है . . . आप एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे । साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारोंका आपके विशाल हृदयमें वास नहीं था .. आपका उद्देश्य जीव-मात्रका कल्याण करना था । सार्वभौम जैनधर्मकी शिक्षाओंको समस्त संसारमें प्रचारित करना ही आपका ध्येय था । वे उन पथ प्रदर्शकोंमें से एक थे, जो समाज परिवर्तन और उन्नतिका मानचित्र स्थापित कर जाते हैं, जिसे संसारके मानवमात्रको कार्यान्वित करना है और स्व-पर--समस्तका कल्याण करना है ।"[4]

<u>प्राचीनताके प्रेमी</u>–पच परमेष्ठिमे गुरुत्रयीके पदयोग्य–<u>विशुद्ध साधु</u>, सुविहित एव कुल <u>उपाध्याय</u> प्रभाविक व

गीतार्थ <u>आचार्य</u> पदयोग्य—सुरीश्वरजीकी विचारधारा जितनी भव्य थी—आचरण उतना ही महान था । उन उत्तम विचारोंको अपनी उपदेशधारामें निरूपित करते हुए जीव स्वरूपकी प्ररूपणा द्वारा वर्तमान जीवविज्ञानकी अपूर्णता, पंचास्तिकाय, द्रव्य-पर्यायादिके परिचय करवाते हुए, वर्तमान भौतिकशास्त्रादि सर्व विज्ञानोकी पा-पा पगली; चौदह राजलोक-द्वीप-समुद्रादिके स्वरूपको वर्णित करते हुए वर्तमान भूगोलकी अस्पष्टता, 'सूर्यप्रज्ञप्ति' आदि सूत्रोंके खगोलिक तथ्योके साथ वर्तमानकालीन खगोलादिकी असमंजसता आदि अनेक विषयोंके साथसाथ प्रमुखतया 'परम अहिंसाके' उपलक्ष्यमें अन्य धर्मोंके 'दयाधर्मकी' तुलना करके जैनधर्मकी परापूर्वसे प्रवाहित उत्तमविद्याओंका-शाश्वत सिद्धान्तोका और मानव समाजोपयोगी विचारश्रेणियोका वर्णन करते अघाते नही थे । शास्त्राध्ययनकी *आवश्यकता*—सम्पूर्ण सत्यके सशोधकके विस्तृत-गहन-सापेक्षिक-समीक्षायुक्त अध्ययनके पीछे छीपा राज हमे **"चिकागो प्रश्नोत्तर'**मे व्यक्त उच्चारणोमे स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है—*यथा*—**"नाना प्रकारके धर्मशास्त्रोंका अवलोकन करनेकी आवश्यकता इसलिए हैं, क्योंकि,** पक्षपात रहित **होकर-मध्यस्थ भावसे सर्व मतोंके शास्त्रोंका अध्ययन करके तत्त्वविचार करनेसे जीवको सत्यमार्गकी प्राप्ति होती है ।"**

इन्ही उद्‌गारोंके लिए "श्री आत्मानंद जन्म शताब्दि स्मारक ग्रन्थमे" स्वतंत्र विचारधारा प्रकट की गई है-दृष्टव्य है—What a liberality of views ! What a mental poise and a carving for the truth! But what about our selves ? We know not our own religion, and our own faith is shaking for that reason To study comparative religion and than to turn, by our sweet and intelligent persuasion, the non-believers into Jains would mere dream for us all"

उनके हृदयमें केवल जैनधर्मकी उन्नति और जैन समाज-सुधारकी ही लगन या तड़प थी, ऐसा नही था, लेकिन समस्त मानव जातको उन्नत देखनेकी उत्कट आकाक्षा थी । वे मानते थे कि, किसी मत या पथके प्रचारमें ऐसे सत्य और ईमानदारी होने चाहिए, कि जिससे मानवताके व्यापक नियमोकी उपेक्षा न हो अथवा विशाल मानव जातिके हितके प्रतिकूल कुछ भी न हो, लेकिन सबकुछ मनुष्य जातिके सुख व कल्याणको बढानेवाला ही हो-यथा-**"इसलिए सर्व मतवाले अपनी जाति; अपने मतमें दर्शाये अहितकारी कामोंको छोडकर अपने आपमें योग्यता प्रकट करके सद्‌धर्मके अधिकारी बनें । सर्व पशु-पक्षियों और मनुष्यों उपर मैत्री-भाव करें । देवगुरुकी परीक्षा करके यथार्थ धर्मकी** प्राप्ति **करें"।** इन वाक्योसे प्रस्फुटित होती है उनकी जीव मात्रके प्रति उदात्त और उदार कल्याण कामनाकी भावनाये ।

इन कल्याण कामनाओमे अतर्निहित उनकी विश्व वत्सलता, जैनधर्ममे आवश्यक अर्वाचीनयुगीन परिवर्तन और समस्त मानव जातको योग्य मार्गदर्शन देकर विश्वमे सुख-शाति स्थापित करनेकी विशाल दृष्टि निम्नाकित रूपमे दृश्यमान होती है । "Shree Vijayanand Suri was totally modern in his out look, and did not the evil customs of his day ..... He wished that the Jain society should march along with the time, it should educate it self, organise it self and act and preach the doctrine of Ahimsa to every person. For Mr V R Gandhi's efforts, at Chicago, Jainism would have been little known to the other religious minded people of the world Now, western scholars come to India to study Jainism Could we establish a grand research library, where these foreigners and our own scholars may be able to dip, deep into the ocean of our ancient literature and bring out for the world pearls of purest ray serene"

उपरोक्त प्ररूपणामे सक्षम सुरीश्वरीजीके दो विरोधाभासी व्यक्तित्व—प्राचीनताके प्रेमी एव अर्वाचीन अवधूका परिचय प्राप्त होता हैं । इस विलक्षणतामे जो असाधारणत्व और विस्मयता छिपी है, वह यह है कि, इसी विरोधाभासी व्यक्तित्वकें कारण ही वे एक साथ-एक समय, एक स्थान पर पुरातन सौदर्यको यथास्थित रखते हुए, उन्ही तथ्योको अद्यतन अवधारोमे ढालकर सजानेमे सफल हुए हैं । इसीके बल पर उन्होने परस्पर धर्मोंके सद्‌भाव और जातीय एकताका बिगुल बजाकर एक और अखड विश्वके एव समुन्नत स्वाधीन

राष्ट्रके तथा करुणा सभर प्रेमभाव और तितिक्षा रूपी त्रिवेणीकी तरलतामें सूक्ष्म जतुसे समस्त जन-जन पर्यंतके साथी बननेमें सफलता पायी थी ।

__आचार्यश्रीजीका मिशन__–**उनकी** पैनी दृष्टिमें सास्कृतिक **चैतन्यके** अभावमे, भरपूर भोग विलासोके सध्याकालीन **मनमोहक रंगोंमें परमसुख** एव आनदके आभासका चित्र **झलकता** था । तत्कालीन विभिन्न क्लिष्ट-कष्टदायी-**कंकासी परिस्थितियोंमें, हिंसादि अनिष्ट मुक्त जीवन स्वप्नील कल्पनाओसे भी परे था ।** अनेक रूढियो और प्राचीन रिवाजोंसे ग्रस्त समाजमें **अज्ञानताके कारण** दीन-हीन-दयनीय जीवनके सुधार और उद्धारकी अत्यावश्यकता थी। उनके ही शब्दोमे–**"प्राणी-मैत्री, मानव-कल्याण, समाजोद्धार,** राष्ट्रीय एकता और **विश्व बंधुत्व–ये पंचामृत हैं, जो मानव समाजके स्वास्थ्यके लिए संजीवनी औषधि तुल्य हैं ।"**–इन पचामृतोको कथित करनेवाले वचनामृत सत् वाणी स्वरूप भी है और सत्य स्वरूप भी । ये अमृतौषधियाँ है राजरोग या जीवलेवा बिमारियोके लिए, जो जनजीवनकी स्वस्थताको कुरेद कुरेदकर विनष्ट कर रही है ।

समाजोद्धार और राष्ट्रीय एकता–उन्होने अपने ग्रन्थोंमे समाजोद्धारके लिए विशिष्ट अभिगमोको दर्शाते हुए अनेकबार शादी-ब्याहोंमे होनेवाले फिजूल खर्च, भोजन समारभोके ठाठ और दहेजादिमे व्यय होनेवाले निरर्थक धनराशिको जरूरतमदोके लिए अर्पण करनेकी अपील की है तो शादीकी योग्यताकी चर्चा करते हुए शादी करनेवाले दुलहा-दुलहिनकी उम्रादि योग्यताकी विशद प्ररूपणा की है । **"जैनागमोंमें तो "जोवणगमणुपत्ता" इति वचनात्, जब वर-कन्या यौवनको प्राप्त होवे तब ही विवाह करनेकी प्ररूपणा है ।** 'प्रवचन सारोद्धार'में **लिखा है कि, सोलह वर्षकी स्त्री और पचीस वर्षका पुरुष-तिनके संयोगसे जो संतान उत्पन्न होवे, सो बलिष्ट होवे हैं इत्यादि मूलागमसे तो बाललग्नका और वृद्धके विवाहका निषेध सिद्ध होता है ।"**

होशियारपुर श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठावसर पर अपने विचारोको प्रस्तुत करते हुए आपने फरमाया था –**"बालविवाहकी प्रथा और परदेकी कुप्रथा मुस्लिम शासनकालमें प्रचलित हुई । इससे पहले इन दोनों बातोंको कोई नहीं जानता था । अब वह समय व्यतीत हो चूका है । इसके साथ हीं उन प्रथाओंको विदा कर देना उचित है । बालविवाह सर्वनाशका कारण हैं । इससे मस्तिष्क और शरीरका विकास रुक जाताहै । कई व्याधियों उत्पन्न हो जाती हैं । जब तक वीर्य परिपक्व न हों, और पढ़ाई समाप्त न हों, तब तक उनका विवाह न करें ।"**

सामान्यतया समाजके साधारण गृहस्थोके लिए उनके दिलमे अपार करुणा थी । जीवन यापनके जटिल झमेलोसे दूर रहकर अत्यन्त सरलतम जीवन बसर करनेके लिए उनका सदैव आग्रह रहता था। उनका संक्षिप्त सारभूत उपदेश यही था कि **"अपने खर्चको हंमेशा आमदनीसे कम रखो, सच्चाई और ईमानदारीसे सब काम करो, किसीको यथासंभव दुःख न दो - यही धर्मका निचोड़ है ।"**

समस्त राष्ट्रीय जनजीवन पर दृष्टिपात करने पर आचार्य प्रवरश्रीने निदान किया था कि, अज्ञानता ही इन सर्व रूढियोकी बुनियाद है । अत उन्होने उनकी अज्ञानताके अधकारको अदृश्य करनेवाले आदित्यके- -साहित्य सृजन, प्रवचनधारा और स्वयकी आचरणा रूपी–प्रकाशसे प्रकाशित करके ज्ञानोज्ज्वलता प्रदान करनेका भरसक प्रयत्न किया । शिक्षाका प्रचार होनेसे ही धार्मिक और व्यावहारिक उन्नति सभव हो सकती है–ऐसा सोचते हुए उन्होने अपनी अतिम क्षणोमे भी अपने पट्टधर श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजीम सा को इस बातका परामर्श दिया था कि अगर सरस्वती मदिरकी स्थापना न हुई तो अबूध-अज्ञान-भोले समाजका बेहाल हो जायेगा, अत मेरी यही कामना है कि, सरस्वती मदिरोकी स्थापना करके ज्ञानका प्रचार और प्रसार करना चाहिए । **"भारत देश आज तक अपनी संस्कृति और सभ्यताकी रक्षा किसके बल पर कर पाया है? - क्या आपने कभी सोचा है? ... मुझे तो स्पष्ट कहना पड़ेगा कि वह बल हमारे ज्ञानका है, जो हमें अपने इतिहास-दर्शन-साहित्य आदिसे प्राप्त हुआ है ।..... यदि सच पुछा जाय तो इस जागृतिका प्रारम्भ न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा.से ही हुआ है । आपने समाजकी दशाको देखकर यह खूब विचार लिया था कि यदि यह दशा रही तो कुछ दिनों बाद न जाने क्या से क्या हो जाय ? फलतः समाजकी**

जागृतिके लिए शिक्षा-प्रचार, संगठन आदि कार्योंके लिए समाजका पथ प्रदर्शन किया ।"[13]

श्री आत्मानंदजीम.सा.ने स्वयं भी ज्ञान-दानके लिए जीवनके अंतिम समय तक अनवरत साहित्य सृजन-कार्यको सक्रिय रूपमें जारी रखा । साथमे इस साहित्य सर्जनका माध्यम भी हिन्दी रखा । उन दिनो हिन्दी-खड़ीबोलीका आकार–रूप सज्जादि–नवसर्जनको प्राप्त हो रहा था । उन्होने खड़ी बोली–हिन्दीके गद्य रूपकी प्रमार्जनामें अपना विशिष्ट योगदान दिया था । यद्यपि, उन दिनोंमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाका बहुमान नहीं मिला था, लेकिन, हिन्दी भाषियोंकी बहुलताका अनुभव करते हुए उन्होने हिन्दीमें रचना करनी उपयुक्त समझी, जो शीघ्र ही लोकभोग्य हो सके । इस प्रकार राष्ट्रीय एकताके बीज उनके जीवन व्यवहारमे भी हमे प्राप्त होते हैं । उनके प्रवचनोका सूर भी यही था, "भिन्न भिन्न जातियाँ और संप्रदाय सब एक ही वाटिकाके फूल हैं। कोई कारण नहीं कि उनके पारस्परिक संबंध विच्छिन्न रहें । याद रखो, आप तभी बलवान और दृढ़ बनोगे जब व्यर्थ मतभेद दूर करके परस्पर संगठन व ऐक्य स्थापित करोगे..... पारस्परिक एकतामें लाभ है और उसीमें शक्तिका रहस्य हैं ।"[14] अतः हम अनुभव कर सकते हैं कि श्री आत्मानदजीम सा केवल धार्मिक नेता ही नही लेकिन समाजके उद्धारक और सुधारकोके अग्रदूत थे, तो राष्ट्रीय एकताके उद्‌घोषक भी थे ।

<u>*प्राणी मैत्री*</u>–**"अप्पा सो परमप्पा"** विश्वके समस्त जीव जगतके प्रति आत्मीयताका भाव, निःस्वार्थपूर्ण सकल जीवराशिके प्रति कल्याण कामना ही प्राणी-मैत्री है । ऐसी 'प्राणी-मैत्री'के भाव केवल त्रिविध त्रिविध–सपूर्ण रूपेण-अहिंसामे समाहित है । **"मित्ती मे सव्व भूएसु"** की भावनाको चरितार्थ करके एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय तकके जीवोंकी मैत्री-पूर्ण रक्षा करनेवाले जैन सिद्धान्तको विश्व व्यापक बनाने और सर्व जीवोको अभय प्रदान करके स्वयको नीडरताकी प्राप्ति करानेवाली परस्परकी पूरकताको प्रस्तुत किया है । किसीभी जीवका घात होनेसे उस जीवसे वैर निर्माण होता है, पुनः वह वैरभावना परूपरासे विकसित होती जाती है । मरनेवाला जीव प्रबल शक्तिवान् बननेके पश्चात् परपरित संचित वैर-भावके कारण कभी न कभी, कही न कही, किसी प्रकारसे सयोग-निमित्त प्राप्त होते ही हमारा घात करता है और वैर तृप्तिका अनुभव करता है, जो प्रायः तृप्ति न बनकर परम्परित वैर वसूलीकी तडप बन जाता है । यही कारण है कि हमे सदा-सर्वसे डर रहा करता है ।

उपरोक्त 'अहिंसा' सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए जिनशासन उद्‌घोषणा करता है कि, जो जितना अहिंसक होगा वह उतना ही नीडर होगा । अतः किसी भी जीवको–छोटे से छोटे या बडे से बडे जीवको घातसे-मृत्युसे बचाना ही स्वयकी आत्माको घातसे बचानेकी ही प्रक्रिया स्वरूप है, जिसका विवेचन-प्ररूपणा भी विश्वशाति और विश्वसुखाव रीके बीज सदृश माना गया है । इसी उद्देश्यको लेकर श्री आत्मानदजीम सा ने प्रायः अपने मुख्य सभी ग्रन्थोमे ऐसी परिपूर्ण अहिसाकी प्ररूपणा की है–'जैन तत्त्वादर्श'मे धर्म-स्वरूपका वर्णन करते समय 'अहिंसा पालन'को समझाया है । 'नवतत्त्व सग्रह'मे कर्मके बध-आश्रव निर्जरा तत्त्वकी प्ररूपणान्तर्गत "हिंसा-अहिंसा'का स्वरूप स्पष्ट किया है । 'अज्ञान तिमिर भास्कर'मे वैदिकी हिंसाके हिसक स्वरूपको स्पष्ट करते हुए उससे कैसे बचा जा सकता है, इसे दर्शित करवाते हुए 'अहिसात्मक आत्मिक यज्ञ'के स्वरूपको प्रदर्शित किया है जबकि 'तत्त्वनिर्णय प्रासाद'मे 'अयोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका' और 'लोकतत्व निर्णय'के बालावबोधका विवरण प्रस्तुत करते हुए, एव मनुष्यके 'सोलह सस्कार' वर्णनान्तर्गत अतिम सस्कार वर्णनमे भी, जाने-अनजानेमे हुई हिसाके लिए निदा-गर्हादिकी विस्तृत प्ररूपणाका प्रयुजन हुआ है । 'सम्यकत्व शल्योद्धार'मे 'मुहपत्ति-निर्णय'के विश्लेषण प्रसगमे और 'चिकागो प्रश्नोत्तर'मे सर्वधर्म समन्वयी–विश्वधर्मके स्वरूप वर्णनमे तथा 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'मे विभिन्न प्रश्नोत्तरातर्गत हिंसा विषयक शकाओ एव समस्याओके समाधान युक्त प्रत्युत्तरोमे अहिंसा विषयक विवेचन हुआ है । **"अगर संसारका मानव समाज अहिंसा तत्वको जान लें, उसके यथार्थ स्वरूपको पहिचान लें तो जगत की शान्ति भंग होनेका अवसर ही प्राप्त न हों, और न निर्बलों पर अत्याचार एवं अन्याय करनेका मौका मिले । अपने अनुचित**

स्वार्थके लिए दूसरोंको कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है ..... जैनधर्मके प्रवर्तकोंने अहिंसाके अंग-प्रत्यंगका अतिसूक्ष्म और अति विशद विवेचन किया है; और यह सिद्ध किया है कि अहिंसाका परिपालन सभी परिस्थितियोंमें–क्या धार्मिक क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक एवं राष्ट्रीय–किया जा सकता है, उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती ..... जैनधर्मके सभी सिद्धान्त-आचार-विचार अहिंसा तत्त्वके ऊपर रचे गये हैं ..... जैनधर्मका अहिंसा तत्त्व स्थूल जगतके परे सूक्ष्म जगत तक जाता है .... इस धर्मके प्रवर्तकोंने इसका कथन मात्र ही नहीं किया है, बल्कि अपने जीवनमें व्यवहार्य एवं आचरणीय बनाया है । ..... सर्वदा "सत्त्वेषु मैत्री"की उत्कृष्ट भावनाको ध्यानमें रखनेवाले महाव्रतधारी साधु ही "अहिंसा"का पूर्णतः पालन कर सकते हैं ।"[१५]

इस अहिंसा रूप प्राणीमैत्रीको राष्ट्रीय-राजनैतिक-विश्वोपकारक सिद्ध करते हुए लिखते है - "अहिंसा राष्ट्रकी पराधीनतामें कभी कारणभूत नहीं हो सकती, क्योंकि पराधीनताके साथ अहिंसाकी व्याप्ति नहीं है । प्रत्युत, अकुशल एवं अकर्मण्य राष्ट्रीय कर्मचारियोंसे देश परतंत्र हो जाता है ।"[१६] "गृहस्थ राष्ट्रीय एवं राजनैतिक कार्योंको अहिंसक रहकर भी भली प्रकार कर सकता है । बल्कि अहिंसक मनुष्य नीति एवं दक्षताके साथ कार्य करनेमें समर्थ होगा, जबकि हिंसक, उन कार्योंको अपने स्वार्थ एवं कुटिलतासे करेगा । अहिंसक सर्वदा प्रजाजनके हितके लिए अपने स्वार्थोंको ठुकरायेगा, दुष्टोंको निग्रह करेगा, साधुजनों पर अनुग्रह करेगा । ऐसी हालतमें अहिंसाको भीरुता-कायरताकी जननी कहना नितान्त गलत है ।"[१७]

इस भावनाको आचार और विचारसे प्रचारित करनेवाले जैनसाधु प्राणीमात्रके मित्र है, और विश्वमे अनायास ही सम्मानित स्थान प्राप्त करते हैं । लेकिन तत्कालीन समाजकी दयनीय स्थिति, जो विशेषत अज्ञानतासे ही प्रकट होकर पनपी और प्रसारित हुई, परिणामत अनेक साधु स्वांगमे भटकते फकीर बाबाओ और चिलम-गाजेकी महफिलकी मौजें माननेवाले महतादिकी पापलीलाओको एव उनसे फैलायी गई अव्यवस्थाको उद्घाटित करके साधुओंके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं - "साधु उसीको होना चाहिए जो तन मात्र वस्त्र और भूख मात्र अन्न लें, शील पालें और लोगोंको हिंसा-झूठ-चोरी, कपट-दंभ-छल अन्यायी व्यापार, अनुचित प्रवृत्तियाँ आदिसे उपदेश द्वारा बचायें, नहीं तो साधु होनेसे लाभ नहीं ।"[१८]

मानव-कल्याण और विश्व-बधुत्व –पचामृत भावनाके अतर्गत, मानव कल्याण और विश्व बधुत्वकी भावनाको क्रियान्वित करने हेतु उन्होंने शताब्दी पूर्व अमरिकाके शहर चिकागोमे आयोजित 'विश्व धर्म परिषद'मे श्रीयुत वीरचदजी गाधीको अपने प्रतिनिधिके रूपमे प्रेषित किये, जिन्होने वहाँ मानव मात्रके जीवनोपयोगी–वैयक्तिक, नैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एव आध्यात्मिक प्रगतिके अतर्गत सभ्यताकी प्रगति और सस्कृतिमे सुधार करनेवाली मानवकी सुषुप्त कार्यशक्तियोकी जागृतिकी प्रक्रिया प्रदान करनेवाले विचार सैद्धान्तिक रूपमे प्रस्तुत किये हैं ।

शारीरिक विकारोंकी द्योतक सभ्यता मानवको भौतिकताकी चकाचौंध दर्शाती है । व्यक्तिको पूर्णतया बहिर्मुख बना देती है, अत उसे भौतिक या अपराविद्या कहा जा सकता है, किन्तु इसे स्वच्छ-शात-सुष्ठु बनानेवाली प्रगतिकारक सभ्यताके अतर्गत आर्थिक, सामाजिक, नैतिक-राजनैतिक, वैज्ञानिक-कलात्मक-शिल्प स्थापत्य युक्त विविध कला-कौशलादिमे स्व-पर हितार्थ, नित्य नूतन आविष्कार और परिष्कार, सशोधन और सुधार, धार्मिक सिद्धान्तोकी स्थिरता स्थापित करते हुए सात्विक गुणोकी समृद्धिके लिए क्षमाशीलता-नम्रता-विनयशीलता-परोपकारिता-'स्वस्थ तनमे स्वस्थ मन'को समझानेवाली शैक्षणिकता आदिको समाविष्ट किया जा सकता है, जिससे उत्तम सुखाकारी युक्त उच्च जीवन स्तरकी प्राप्तिकी सभावना उद्भावित हो । ऐसी सभ्यतापूर्वक, सहिष्णुतासे समन्वय साधित करते हुए प्रत्येक सद्धर्मके प्रति सद्भाव (जिसकी जड़ जैनोके अनेकान्तवादमे अतर्निहित है) और उसी शृखलाको विस्तीर्ण करते हुए अध्यात्मकी, आत्मीय (या आत्मिक) ज्ञानकी, और परपरासे शाश्वत सुखकी प्राप्ति–इसे ही सस्कृतिमे सुधार रूप माना जा सकता है ।

सस्कृतिसे मानवकी आत्माका उत्थान-उत्कर्ष-अभ्युदय प्राप्त होता है, क्योकि सस्कृति ही चिरजीव होती है-सभ्यता परिवर्तनशील । अनेक सुसस्कारोसे सुसज्जित सस्कृति मानव चेतनाको पुष्ट करती है, और

असख्य काल तक पथ प्रदर्शन करके अनागत आपत्तिका सामना करनेका सबल प्रदान करते हुए आत्मिक **धर्मोंकी अनूठी सामग्रियोंसे सम्पन्न बनाती है । संस्कृति वह होती है** जो आचार-विचारोकी, वाणी-वर्तनकी, तन-मनकी एकरूपता साधनेमे सहयोगी हो. जो जीवके स्वात्म व्यक्तित्वको विश्वके प्राणी-मात्रमे विलीन करनेमे या र ष्टिमे समाहित करनेमे तन्मय बना दे–जैसे भक्त, भगवंत-भक्तिमे तन्मयता प्राप्त करते हैं । साथ **ही 'अप्पा सो परमप्पा'के विशद दृष्टिकोणको आत्मसात करनेका गौरव प्रदान करें । शाश्वत आत्माका** परिचय करानेवाली सस्कृति, जड़-भौतिक-सासारिक सभ्यताको अपने रगमे रगकर सभ्यताके सुनहरे आलबनोका सत्य स्वरूप स्पष्ट करके आत्म कल्याणको अखत्यार करनेका आहवान करती है । अत मानवको अतर्मुखी बनानेवाले इस सस्कृति सुधारको ही आध्यात्मिक अथवा पराविद्याका स्वरूप माना जा सकता है ।

ससारयात्राको सरलता बक्षनेवाली सभ्यता होती है, जबकि सस्कृति-दार्शनिक चिन्तन और आध्यात्मिक आदर्शो द्वारा धर्म एव आत्माका पूर्णत्व और मोक्षादिका अन्वेक्षण करती है । अतएव हम अनुभव कर सकते है कि, बिना सस्कृतिके' सभ्यता बिन बादल बरखा' सदृश अथवा 'निष्प्राण मृतदेह' समान है, क्योकि आत्माकी तरह अमर सस्कृति है और देहकी भॉति परिवर्तनशील सभ्यता है । एक सस्कृतिमे विभिन्न समयमे विभिन्न प्रकृति अनुसार सभ्यताका वैविध्य असभव नही । सस्कृति रूप फुलवारी सात्त्विक गुणोपेत उत्तम सभ्यता रूप फूलोंसे शोभायमान बन सकती है, लेकिन अति उत्तम प्रकारकी भौतिकतासे संवारी गयी सभ्यता, ससार युक्त सांस्कृतिक सुवासके बिना व्यर्थ ही मानी जाती है-प्राय नुकशानकारी भी हो सकती है ।

ऐसी सुवासित-चिरंजीव सस्कृतिको जीवत रखनेवाले होते हैं दार्शनिक उपदेशक धर्मगुरु (१) समाज सुधारक-साहित्यकार-युग निर्माता (२) एव सुचारू अर्थ व्यवस्थापक तथा राज्य व्यवस्थापक राजपुरुष (3) विविधलक्षी कला नियोजकादि । जो सस्कृति केवल ऋद्धि-समृद्धिको ही प्राधान्य देती हैं (जैसी पाश्चात्य संस्कृति) वह तूफानी समंदरमे बिना खेवैयाकी नाव सदृश आश्रितोके साथ स्वयंकी सुरक्षाको खो देती है। इसे सस्कृति नही सभ्यताकी विकृति ही कह सकते हैं । सुसस्कृतिका सबक है उत्तमोत्तम त्यागकी प्रधानता (जैसे पौर्वात्य सस्कृति)। पराकाष्ठाका परित्याग ही, आत्माकी अतर्मुखताका उद्घाटन करके उसे परमात्मा स्वरूपकी प्राप्तिमें सहयोगी बनता है ।

ऐसे प्रगतिशील सभ्यता युक्त उत्तम सस्कृतिका समस्त विश्वमे प्रचार और प्रसार होनेसे भौतिक जडवादकी जडें निर्मूल होकर विश्वको सर्जनात्मक, क्रियाशील, उत्तम आदर्श अध्यात्मकी प्राप्ति होगी और अशाति-भय-आतकके घने बादलोमे घिरि मानवताको इस आदित्यका आगमन पुन प्रकाशित करके चमकायेगा। ऐसे उपदेशक साधुके विशिष्ट लक्षणोको स्पष्ट करते हुए श्रीआत्मानदजी म लिखते हैं, **"धन्य धर्मरूपी धनके योग्य होनेसे मध्यस्थ, स्वपक्ष-परपक्ष में राग-द्वेष रहित, सत् भूतवादी-ऐसा जो होवे सो देशना-धर्मकथा करें।"**[१४] इन सुगुरुओंसे अत्मबोध प्राप्त होता है, समस्त जीवोके प्रति मैत्री-प्रमोद-करुणादि भावोका सचार हृदयकमलमे होनेसे प्रफुल्लितता छा जाती है । सच्चे अर्थमे इसी मानवतायुक्त जीवन मानव-कल्याण और विश्व-बधुत्वकी नीव है ।

इस आत्मबोधकी तत्कालीन और वर्तमानकालीन युगमे क्या आवश्यकता है, इसे स्पष्ट करते हुए लिखते है- **"जिस प्राणीकुं आत्मबोध नहीं हुआ है, सो प्राणी यद्यपि मनुष्य देहवाला होने पर भी, शास्त्रकार-ज्ञानी पुरुष उन्हें शृंगपूंछसे** रहित पशु ही कहते हैं; **क्योंकि** उसकी आहार, निद्रा, **भय मैथुन** आदि **क्रिया** पशु **तुल्य ही होती है । जिस प्राणीकुं तत्त्ववृत्तिसे आत्मबोध** हो जाता है, तिमसे **सिद्धिगतिकी प्राप्ति दूर नहीं है"।**[१५]

इस आत्मबोधकी प्राप्ति द्वारा मोक्षमार्ग पर एक-एक कदम बढ़ाते हुए इहलौकिक-पारलौकिक परपरित सिद्धिगतिको स्वाधीन करनेके लिए सक्रिय होनेकी प्रेरणा और प्ररूपणा ही श्री जिनेश्वर भ.की प्रसादी है। उसके लिए मार्ग रूप आवश्यक आचरणा मुख्य रूपसे पाच प्रकारोमे विभाजित नियम–व्रत हैं । इन्हीसे वर्तमान विश्वकी सर्व समस्याओका समाधान-सपूर्ण सुख, शाति, समृद्धि और सिद्धियाँ प्राप्तव्य हैं–जैसे–

'अपरिग्रह' व्रत, अथवा परिग्रहके परिमाणका नियम कर लेनेसे व्यक्तिको संतोष गुणकी प्राप्ति होती है, जिससे मुद्दीवाद और गरीबीकी खाई समतल की जा सकती हैं; तो 'अहिंसा' व्रत (प्राणतिपात विरमण व्रत) के स्थूलसे या सर्वथा पालनसे जीवोंको निर्भयता मिलेगी । परिणामतः विश्व-युद्धके भयानक, त्रासदायक स्वप्न भी भूला दिये जा सकते हैं. विश्वकी अति विकट और उलझी हुई समस्या-जनसंख्या वृद्धि और भयंकर जीवलेवा बिमारियोमें ढाल बनकर सरक्षण दे सकता है—वीर्यरक्षाकारी, शक्ति प्रदाता—ब्रह्मचर्य पालनका व्रत-नियम ।

इस प्रकार अनेकानेक नियम-सिद्धान्त-अनुष्ठान, विचारधाराये और उच्चादर्शोंके प्रवर्तनसे कोई भी व्यक्ति जनसे जैन, और जैनसे जिन बन सकती है । इन्ही विषयोकी चर्चा-विचारणाओको आचार्य प्रवरश्रीने, गीतार्थ पूर्वाचार्योंके शास्त्राधार रूप सबलके सहारे, विशिष्ट गुणकारी और स्वयकी औपपातिक बुद्धि प्रतिभाके बल पर, अद्यतन रूपमे विश्वके जन समाजके लाभार्थ प्रस्तुत किया—विचारसे-(साहित्य रूपमे), वाणीसे (प्रवचन रूपमे), वर्तनसे (आचरण रूपमे) ।

<u>जैन समाज पर ऋण</u> -"एक छत्र नायक हों गुरुवर, जैन संघके प्राण ।

यशसे पूरित हुआ पंचनद, गुर्जर - राजस्थान ।"

पचनदके ये महान ज्योतिर्धर जिसने समस्त संसारको अपनी करुणासिक्त भावनाओंसे प्रभावित किया था, उनकी जीवन-ज्योत जहाँसे प्रज्ज्वलित हुई, उस ज्ञान दीपक-ज्योत प्रदाता, जैनधर्म और जैन धर्मीको वे कैसे विस्मृत कर सकते हैं? उनके रोमरोममें-नसनसमें-खूनकी बूदबूदमे जैनत्वकी ज्वलतता झलक रही थी।

"भक्तिव्याजवश दिया गया यदि, किया हलाहल पान ।

दातारका उपकार चुकाया, दे अमृतका दान ।।"

उनके विचारसे गुजरात और सौराष्ट्रकी संस्कारिता, धर्मप्रेम, भक्तिभाव, संस्कृति और समृद्धि एव वीरभूमि पंजाबकी वीरता-दृढ़ता-सरलता-धर्मप्रेमादि गुणों द्वारा ही जैनधर्म एव जैनसमाजका उत्कर्ष व उद्धार मुमकिन बन सकता है, तथा क्रान्ति और शान्ति, यांत्रिक और मांत्रिक, बौद्धिक और आस्थिक—इन विरोधाभासी शक्तियोंके समन्वयके बल पर ही जैन शासनका और उसके मूल सिद्धान्त-अहिंसा-सत्यवादितादिका जयजयकार संभवित है। उनके जीवनमे दृष्टिपात करनेसे उपलब्ध होता है, विचार-वाणी-वर्तनसे ओजस्वी क्रान्तिमय जीवन, जिसके भीतरमे अतर्धान है शातिकी तीव्र साधना ।

एक युग प्रवर्तककी हैसियतसे आपने सद्देव-सद्गुरु-सत्शास्त्रकी पूजा-सेवा-अध्ययन तथा अध्यापनका प्रबन्ध, जिनालय-उपाश्रय और पाठशालाओ द्वारा करके जैनसमाजके साधकोमे सम्यक् दर्शन—सम्यक् ज्ञान-सम्यक् चारित्रका सपादन-समार्जन-सवर्धन करवाकर उनके समकितकी शुद्धि करवायी और आत्म कल्याणके मार्गको प्रशस्त किया। आपकी ही कृपासे तत्कालीन समाजमे अर्हन् मतके प्रचार और प्रसारने, प्रभविष्णुताको प्राप्त की ।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिनशासनका जो अनुग्रह श्रीआत्मानदजीकी आत्म-कल्याणकारी राहोमे सन्नद्ध होनेके लिए प्रेरणा स्रोत बना था, मानो उन्होंने उसकी एवजीके रूपमे—उसकी प्रतिपूर्तिके उपाय रूप ही ये सर्व सेवाकार्य न किया हो । अगर उन्हे परमोपकारी पालक जोधाशाहके घर जैन सतोका सयोग न हुआ होता, अगर उन्होने जैन शास्त्रोका अध्ययन न किया होता, एकमात्र सत्यप्रेम-पूजारी बनकर जैनधर्मके प्रतिमा पूजन स्वरूपको उद्घाटित न किया होता, तो यह कीर्ति कीरिट उनके व्यक्तित्वको कैसे भूषित कर सकता! और आत्माको कर्मक्षयकी राहो पर, कर्म-मुक्ति मजिल प्रति हुई उनकी विजय यात्रा कैसे संभवित बन सकती? अत हमे प्रतीत होता है कि, एक उत्तम-कृतज्ञ आत्माके स्वामी, श्रीआत्मानदजी म मानो उस ऋणसे उऋण होनेके लिए ही कटिबद्ध न हुए हो, ऐसे ही जैनधर्मकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए जीवनकी प्रत्येक पलको खर्च करके अपनी छोटी-सी जिंदगानीमे अद्भुत करतब दिखा गये । "जैन समाज

उपर तो एमनो अनहद उपकार हतो । जैन दर्शननी आसपास व्हेम अने आक्षेपोना घन वादल घेराई रह्या हता। साचा पंच महाव्रतधारी श्रमणोना सिंहनाद संभळाता बंध थया हता । बराबर ए ज वखते आ पंजाबी सिंहे दर्शन शुद्धि अने चारित्र शुद्धिनी त्राड गर्जावी । मिथ्यात्व अने ढोंग, प्रपंच अने कृत्रिमता एकी साथे हाली उठ्या ।"[२१].

जैन समाजके धार्मिक-दार्शनिक, सामाजिक-व्यावहारिक-आर्थिक, शैक्षणिक-साहित्यिक-ऐतिहासिक–सर्व क्षेत्रोके विकासके लिए आपने आजीवन अनवरत आयास किये । सर्वको अवलोकित किया, सर्वका अनुभव और अध्ययन किया-पर्यवेक्षण किया एव प्रगतिके प्रबन्ध भी प्रदर्शित किये । उन्होंने एक सुविज्ञ वैद्य सदृश जैन समाजकी नाड परखी, रोगका अनुमान-अनुभव और निदान किया और औषधि भी निश्चित कर दी। जैनधर्मकी स्वस्थताके लिए अर्थात जैनधर्मके सस्कारोको सुदृढ और प्रौढ बनानेके लिए अपनी समस्त शक्ति आजमा दी, फलत जैन समाजकी गगनचुबी कीर्ति पताका मुक्त मनसे लहराने लगी ।

<u>धार्मिक</u>–धार्मिक क्षेत्रान्तर्गत सद्धर्मकी प्ररूपणा, जैनधर्मकी अवहेलना करनेवाले जैनेतर वादियोका खडन करते हुए उन्हे निरुत्तर करना, मूर्तिपूजाके प्राचीन आदर्शोंको पुनर्जीवित करके श्री जिन प्रतिमा श्री जिनमदिर निर्माण-जीर्णोद्धार-सरक्षण, जैनधर्मके महत्त्वको सिद्ध करते हुए, उसके प्रचार-प्रसारको प्रवर्धित करके जैन सिद्धान्तोके प्रचारका व्याप विश्व-स्तरीय बनाना, साधु और श्रावक द्वारा आचरणीय धर्म स्वरूपका निरूपण आदिको समन्वित कर सकते है ।

जो धर्म सत् हो वह सद्धर्म अर्थात् जो शाश्वत हो वह सद्धर्म कहलाता है जिसमे अहिसा-अमृषा-अस्तेय-अपरिग्रहादि व्रत-नियमोका पालन, रत्नत्रयीकी आराधना-साधना और तत्त्वत्रयीके प्रति सम्यक् श्रद्धाका समन्वय किया जाता है । विशेष रूपमे "याज्ञिकी हिंसा"के समर्थक वैदिकादि धर्म, मूर्तिपूजा विरोधी स्थानकवासी, आर्यसमाजी, थियोसोफिस्टादि पंथ, उत्सूत्र प्ररूपक दिगम्बर-बौद्धादि मतवालोके प्रति उनका आक्रोश भडक उठा था -**"श्रीमान आत्मारामजी महाराज वादी हता । जेओए आर्यसमाजीओ साथे, वेदांतीओ साथे तेमज स्थानकवासीओ साथे वाद करीने अनेकने निरुत्तर बनाव्या हता..... ने कालमां 'वादी वैताल' नी पदवीने लायक हता ।"**[२२] उनके साथ वाद-प्रतिवाद और व्यक्तिगत चर्चाके रूपमे अनेक प्रकारसे युक्तियुक्त विचारणा एव आत्म कल्याणकारी शुद्ध धर्माचरणकी प्ररूपणा करते हुए सत्य धर्मकी ओर आनेके लिए तथा सन्मार्गीय बननेके लिए निमत्रण देते हुए अपने 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थका पर्यवसान करते हुए आप लिखते है, **"शुद्ध मार्ग गवेषक और सम्यक्त्वाभिलाषी प्राणियोंका मुख्य लक्षण यही है कि, शुद्ध देव-गुरु-धर्मको पिछानके उन शुद्ध दवादिका अंगीकरण और अशुद्ध देवादिका त्याग करना चाहिए ।"**

आपके प्रत्येक ग्रन्थ-प्रत्येक प्रवचन–आपके वाणी-वर्तनसे–निरतर बहते रहते हैं सद्धर्मकी प्ररूपणाके नीर और असद्धर्मके प्रति अप्रसन्नता-अमर्षकी आँधी । आपने अनेक व्यक्तियोसे विचार विमर्श–चर्चासभाये करके अनेकोके दिलमे सत्य-शुद्ध धर्मकी ज्योत प्रज्ज्वलित की थी । जोधपुरमे स्वामी दयानदजी और आचार्य प्रवरश्रीके मध्य चर्चा-सभाका आयोजन भी इसके उपलक्ष्यमे ही किया गया था । (यद्यपि श्री दयानदजीके निधन हो जानेके कारण यह आयोजन साकार न हो सका ।) इस प्रकारकी विभिन्न चर्चाओका ब्यौरा इस शोध प्रबन्धके अन्य पर्वोमे विस्तृत रूपमे दिया गया है ।

श्री जिनप्रतिमा और श्री जिनमदिरके समर्थन और उनके निर्माण या जीर्णोद्धारकी प्ररूपणा करते हुए तो उन्होने जानकी बाजी लगा दी थी, स्वयके सुख शाति या अन्य भयकर खतरोकी भी परवाह किये बिना ही दिन-रात एक किये थे । **"ते सर्व पंजाबना जुदा जुदा भागोमां अडग निश्चयथी घुम्या अने थोडा समयमां प्रबल विरोधनो झंझावात जोरशोरथी चालु, छतां नवुं क्षेत्र तैयार करी शक्या ज्या स्थानकवासी अने आर्य-समाजिस्टोना भेरीनादो अहर्निश मुर्तिपूजा सामे संभळाइ रह्यां छे एवा क्षेत्रमां पुनः मूर्तिपूजननां मंडाण कर्या, मूर्तिपूजा प्रत्ये प्रेम जगाड्यो, भावपूर्वक पूजा करवाने तत्पर श्रद्धालु समाज सरजाव्यो ।"**. ....[२३]

श्रावक-श्राविकाके कर्तव्यके रूपमें श्री जिन प्रतिमा-श्री जिनमदिर निर्माण, जीर्णोद्धार एव सरक्षण-

परमात्माकी अनेकविध पूजा- सेवादिके विधान: तथा साधु-साध्वीजीके लिए भी परमात्मा-दर्शन, भावपूजा–सवर्धन एवं सरक्षणके लिए प्रेरणा और प्रयत्न-आदिके शास्त्रोक्त संदर्भ देकर उस विधिमार्गके समर्थनमें बार-बार प्रवचन द्वारा मार्गदर्शन किया. साथ ही तद्‌विषयक पुष्टिके लिए साहित्य - सेवान्तर्गत अज्ञान तिमिर भास्कर, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, तत्त्व निर्णय प्रासादादि अपने प्रमुख ग्रन्थोमे इसका विशद विवेचन किया है; और 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थ तो पूर्णरूपेण मूर्तिपूजाके समर्थन सदर्भोका मानो खजाना ही है । सम्पूर्ण ग्रन्थमे मूर्तिपूजाके लाभ, प्रकार, अधिकारी, शास्त्रीय मान्यताये और परापूर्वता-प्राचीनतादिका निरूपण आगमिक व शास्त्रीय ग्रन्थाधारित ससदर्भ स्पष्ट किये है । श्री कुडलाकरजीके शब्दोमे -"पंजाबमां बंध थएलां जिनालयोनां द्वार खोलावी पंजाबने पुनः वीर भूमिनुं नंदनवन बनाव्यु छे.-ते ज तेमनी शक्तिनुं माप छे."२४ इसके साथ ही डा. अमरनाथ औदिच्यजीके भाव भी पठनीय है-"Before the advent of Atmaramji there was a strong tide against 'Murti Puja' . Murti Puja as a means of self-realisation had been almost lost sight of by majority of Jains in the Punjab. Besides the Christian missionaries the Brahma Samaj and the Arya Samaj were working against the time honoured idol worship..... Atmaramji realised the danger and fully appreciating the worth of Murti Puja rebelled against the then current tide . To educate public opinion on the point of idol worship the toured through the Punjab, Marwar, Mewar, Gujarat and Kathiawar, and carried on a vigrous Propaganda in its favour by vigoros preaching" २५ "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर" ग्रन्थमे मूर्तिपूजाका ध्येय स्पष्ट करते हुए आपने सुंदर तर्क पेश किया है–"प्रतिमा बिना भगवंतका स्वरूप स्मरण नहीं हो सकता है । .. हम प्रतिमाको पत्थर मानकर नही पूजते हैं, किन्तु तिस प्रतिमा द्वारा साक्षात् तीर्थंकर भगवंतकी पूजा-स्तुति करते हैं । जैसे सुंदर स्त्रीकी तसवीर देखनेसे असल स्त्रीका स्मरण होता हैं, तैसे ही जिनप्रतिमाके देखनेसे अल्कोंको असली तीर्थंकरका रूप स्मरण होकर जिनभक्ति करनेसे कल्याण होता है ।"२६

इसके अतिरिक्त द्रव्य और भावपूजाका स्वरूप, द्रव्य पूजामें हिंसा-अहिंसा- कर्मक्षयका स्वरूप, सप्रति-कुमारपालादि राजाओंके श्री जिनमंदिर-श्री जिनप्रतिमादिके निर्माण-जीर्णोद्धारोका वर्णन आदि विस्तृत विवेचना करते हुए मूर्तिपूजाको समाजमे परापूर्व-परम्परित-गौरवान्वित स्थान प्राप्त करवाया । अगर उन्होने यह कार्य न किया होता तो वि ः मूर्तिपूजक जैनोका स्थान कैसा होता उसकी कल्पना भी मुश्किल है । श्री जिनमंदिर निर्माणकी आवश्यकताको स्वीकार करते हुए तद्‌विषयक पागलपनको-अतिरेकको हानिकारक माना है -"जिस गांवके लोग धन हीन होवे, जिनमंदिर न बना सकें, और जिनमार्गके भक्त होवे, तिस जगे अवश्य जिनमंदिर कराना चाहिए ।"२७ इस प्रकार किन श्रावकोने कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे जिनमंदिर-प्रतिमा निर्माण करवाये, कैसे पूजा की-इसका उल्लेख करते हुए जैन समाजके श्रावकोको मूर्तिपूजाकी आवश्यकता समझायी।

"नभचुंबी उत्तुंग जो हैं नगर नगर निर्माण,

ये सत्कार्योके ये हैं साक्षीरूप प्रमाण ।।"

इस प्रकार समस्त पंजाबके जैन समाजकी काया पलट करनेके साथ साथ आपने राजस्थानमे विचरण करके जोधपुरादि ग्राम-नगरोके अनेक ओसवाल- पोरवालोको उनके मूल स्वधर्म-जो श्री रत्नशेखर सूरिम सा ने उन्हे सिखाया था-उस मूर्तिपूजक श्वेताम्बर जैनधर्ममे स्थिर किये । "आज मारवाडके शहरोंमें ही नहीं, पर छोटे-बडे ग्रामोंमें भी जैन मूर्तिपूजक समाज दृष्टिगोचर हो रही है यह आपश्रीके जबरदस्त उपदेशका ही प्रभाव है ।"२८ मारवाड-मेवाड- गुजरातादिके अनेक जिनमंदिर मुस्लिम युगमे भग्न हुए थे या काल प्रभावसे जीर्ण हुए थे, उनके जीर्णोद्धारकी प्रेरणा करके उनकी भी कायापलट की; "जिनबिम्बका पूजन मूर्तिपूजा है, और मूर्तिपूजा पंच महाव्रतका खंडन होनेमें कारणभूत है-यह जो भ्रम फैला हुआ था, सो आपने दूर करके जिन-बिम्बका पूजन मूर्तिपूजा नहीं है ध्येय पूजा है–यह बात आपने श्रावकोंको समझा दी । आपने कई चैत्यालयोंका

जीर्णोद्धार करवाया । कई जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा की; और संगीताधारित काव्यमय पूजाय रचकर प्रतिमा पूजनमें रुचि पैदा की ।"[29]. यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जिस सत्य संशोधनके पीछे अपना जीवन पूर्ण रूपसे समर्पित किया-उस सत्यके-मूर्तिपूजाके प्रचार, प्रसार और प्रवर्धनमे भी सर्वस्व ही समर्पित कर दे । जैनधर्मी समाजके लिए यह उनका महत्तम योगदान था । "A large scale to celebrate the Centenary of the birth of Shree Atmaramji M. S. in gratitude of the good, he did to humanity and the benefits he conferred on Jain community by bringing to light the hidden treasures of Jain literature and laying strong and deep foundation of reforms, promulgation of Jainism far and wide."[30]

जैनधर्मके अति महत्त्वाकाक्षी सुरीश्वरजीके हृदयकमलमे, जैनधर्मकी उत्तमोत्तम योग्यताके अनुरूप उसके विश्वस्तरीय प्रचार-प्रसारके व्यापका गुजन निरतर होता रहता था, और उसे मूर्त रूप देनेके लिए अनेकविध-भरसक प्रयास कर रहे थे. जिसके अतर्गत विश्वोपयोगी तात्त्विक सारभूत सैद्धान्तिक प्ररूपणायुक्त ग्रन्थ रचनाये, कई योरपीय-अमरिकी-जर्मनादि विदेशी विद्वानोकी सैद्धान्तिक या अन्य प्रकारकी समस्याओका या शंकाओक समाधान पत्र द्वारा, या परस्पर चर्चा स्वरूपमे करना, विश्व-धर्म-परिषदमे श्रीयुत वीरचदजी गाधीको, अधिकांश जैन समाजके विरोधके प्रत्युत, चिकागो भेजकर विदेशमे जैनधर्म विषयक भ्रामक एव गलत प्रचार जालका विराम करवाना–आदि दृष्टिगोचर होते हैं ।

"जर्मन अमरिका तक फैला तेरा कीर्ति वितान ।
विद्वत्ता पर मुग्ध हो गए होर्नले से विद्वान ।।"

"सत्य धर्मनो फेलावो ए तेमनी अंतरेच्छा हती ।"..... "महाराजश्रीनी ए दीर्घदर्शिताए पाश्चिमात्य प्रजामां जैनधर्म प्रत्ये जिज्ञासा जन्मावी ।"..... "स्वामी विवेकानंद जेम वेदान्तनी फिलसूफीनें प्रकाशमां लावनार हता तेम जैनदर्शननां सिद्धान्तो रजु करनार तरीके मर्हुम वीरचंदभाईने मोकलवामां श्रीमद् आत्मारामजी म.सा. निमित्तभूत हतां ।"[31].

जैन शासनमे साधु और श्रावक-उपलक्षणसे साध्वी और श्राविका भी-को आत्मकल्याणके लिए आचरणीय, आराधनीय, और साधनीय-आचार एव आराधनाओका भी उन्होने अपने ग्रन्थोम विश्लेषण युक्त विवरण दिया है, जिसके अतर्गत चतुर्विध सघको सम्यक्त्व सहित देशविरति या सर्वविरतिधर्म कैसे उपास्य है, और सुख-शातिसे निर्दोष जीवनयापन और परपरा मोक्षसाधन है, दर्शायें हैं । "Another important reform, he undertook, was to improve the character of Sadhu as well as laymen. He purified the order of monks and urged them to aquire knowledge."[32] "जन्म-मरणादि संसार भ्रमण रूप दुःखसे छूटने वास्ते साधु और श्रावकको पूर्वोक्त धर्म (देशविरति और सर्वविरति) करना चाहिए ।"[33] एक जैन साधुत्व अगीकृत व्यक्ति जिस कोटिके उपकार कर सकते है, ठीक वैसे ही श्रीमद् आत्मानदजीम सा ने भी धार्मिक दृष्टि बिंदुसे यथाशक्य उपाय करके जैनधर्मी समाजकी गहरी निंद भगाकर उसे जागृत करनेमे महद् योगदान किया था ।

<u>दार्शनिक</u>--जैन दर्शनके स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, कर्मवाद, षट्द्रव्य, नवतत्त्व, चौदह राजलोक, चौदहगुणस्थानक स्वरूप आदि प्राय सर्व दार्शनिक सिद्धान्तोका आचार्य प्रवरश्रीने अपने ग्रन्थोमे विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। नवतत्त्वके लिए तो स्वतत्र ग्रन्थका ही निर्माण किया है, तो कर्म स्वरूपादिका विवेचन जैन तत्त्वादर्श, तत्त्व निर्णय प्रासाद, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, आदि ग्रन्थोमे विभिन्न परिप्रेक्ष्यमे किया गया है· "जैन सिद्धान्तोना जिज्ञासुने आ एक ज ग्रन्थमांथी (जैन तत्त्वादर्श) एटली सामग्री पूरी पडे छे के तेमांथी तेने जैन दर्शननुं सारामां सारुं सर्वोत्कृष्ट दर्शन थई शके छे ते निःसंदेह छे..... आ प्रवीण ग्रन्थकारें आखा विश्वनी प्रवृत्तिथी सिद्ध करी बताव्युं छे के आर्हत् धर्मनी भावना पुरातनी छे ने ईतरवादियोना धर्मनी भावनानुं स्वरूप खुल्लुं करी जैनधर्मनां तत्त्वो सर्वोपरि होवानुं साबित करी आप्युं छे.... 'ईसाई-मत-समीक्षा' मां

ईश्वरने जगत्कर्ता न माननावाळा जैनोने धन-दोलत-उच्चपदवी वि. क्यांथी मळे छे अने माननावाळा ईसाइयो बहुलताए दुःखी केम छे ?–तेनुं पृथक्करण करी कर्मनी थिअरी बहु सारी रीते समजावी छे।"[34]

इन प्ररूपणाओके बल पर उन्होने अबुध जैन समाजको जागृत करते हुए जैन दर्शनकी उत्कष्टता, महत्ता और जीवनमें आवश्यकताको समझाया-**"जैन दर्शननां मौलिक तत्त्वोनो, एनी प्राचीनता पुरवार करनारी नोंधोनो अने प्रतिदिन आचरणमां उतरी रहेली करणीओनो टूंकमां यथार्थ खयाल आपतो ए ग्रन्थ साचे ज 'तत्त्व निर्णयनो प्रासाद' अर्थात् महेल रूप छे । 'जैन तत्त्वादर्श' वांचतां ज प्रभु श्रीमहावीरना सिद्धान्तोनुं रहस्य खडुं थाय छे ।"**[35]

अनेकान्त और स्याद्वादके निरूपणके सहारे ईश्वरके जगत्कर्तृत्वका, अद्वैत ब्रह्मका, जीव-कर्म-ससार-मोक्षादिकी अनादि अनत स्थितिका, नय और प्रमाण एव सर्व नयवादोके सम्यक् सम्न्वयका–आदि अनेकानेक विषयोकी प्ररूपणा सैद्धान्तिक, बौद्धिक और तात्त्विक युक्तियुक्त तर्क द्वारा जन समाजके समक्ष पेश की है । इस प्रकार आत्मा और परमात्माके स्वरूपको नय-प्रमाणसे समझाकर अंधश्रद्धा और वहमादिको दूर करके सत्य एव शुद्ध रूप परमात्मा पूजन, कर्म-पुरुषार्थादि पाच निमित्त कारणोके समवायसे सृष्टि सचालनादिकी प्ररूपणा की है-**"आत्मा क्या है ? परलोक क्या है ? विश्व क्या है ? ईश्वर है कि नहीं ? आदि समस्याओंको सुलझानेकी कोशिश सभी दर्शनोंने की है । जैन दर्शनने भी इस विषयमें दुनियाको बहुत कुछ दिया है, अधिकारके साथ, अपने समयके अनुसार, वैज्ञानिक दृष्टिसे दिया है ।"**[36]

यह उनका ही प्रभाव है कि सर्वधर्मके दार्शनिक सिद्धान्तोके प्रहारोसे जैन दर्शनको मुक्ति प्राप्त हुई है। उसके अपने सामर्थ्य, स्वायत्तता और सर्वोत्तमताका अनुभव जैन-जैनेतर सबको हुआ है - **"जब मैंने आत्मानंद महाराजके ग्रन्थ देखे और उनके वाचनसे जब प्रतीत हुआ कि जैनधर्मके स्याद्वाद या अनेकान्तवादमें द्वैताद्वैत, क्षणिक-शाश्वतवाद आदि सभी द्वंद्वोंका समन्वय किया है । जब देखा कि, रत्नत्रयमें ज्ञान, उपासना तथा क्रियाकांड-इन तीनों मोक्षमार्गोकी आवश्यकता एक साथ बतलायी है; पंच परमेष्ठिके ध्येय स्वरूप ईश्वर जैन-धर्ममें होते हुए भी ईश्वर सृष्टिकर्ताका अभाव है, तब मैं उस पर लट्टु हो गया । तबसे आज तक जिनवाणी पर मेरी श्रद्धा कायम है और कायम रहेगी ।"**[37]

इस प्रकार जैन दर्शनके इस महान दार्शनिकके ऋण स्वीकारते हुए और अपनी भक्ति प्रकट करते हुए श्री चैतन्यदासजी श्रद्धाजलि समर्पित करते हैं-**"All of us should pay homage to him as a great scholar, thinker and philosopher the friend of humanity."**[38]

<u>सामाजिक</u>– **"धारा जन्म जगत दुःख टारा,**
जैन जातिका पतन निवारा,
बही स्नेहकी मधु-रस धारा,
प्रेम पयस्विनी प्रगटी, डूबे पाप ताप दुष्काम . .. तुमको लाखों प्रणाम ।"

यह वह समय था, जब जैन जगतमे जातीय और साम्प्रदायिक विद्वेषकी प्रचुरतासे व्युत्पन्न प्राचीरोने सामाजिक एकताको खड-खड कर दिया था । समाजमेसे मानवता मानो मर चूकी थी, अज्ञानता भर चूकी थी, समाज हैरान था-परेशान था विह्वल था । सामाजिक-राजकीय-नैतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त शीघ्रतासे, बेमर्याद-सीमातीत रूपमे बरबादीकी ओर पैर पसार रही थी । सभीको अपने अस्तित्वकी सलामतीकी आशका थी । चार-पाच सदियोके लगातार मुस्लिम-ईसाइयोके दोहरे आक्रमणोने शिक्षा-सस्कार-सस्कृतिकी तबाही की थी-मानो उस पर ताले लग चूके थे। परिणामतः सामाजिक कुरूढियाँ-अराजकता और अनिश्चितताके तनावमे सारा समाज उलझा हुआ था। अमर और तात्त्विक सामाजिक प्राणशक्ति जैसे आच्छादित हो चूकी थी, जिसे भीषण झझावातोने घेरकर प्रकम्पित कर दिया था, और जो स्वयके अस्तित्वके लिए तडप रही थी। मुस्लिम सम्राटोके त्रास, अंग्रेजोके षड्यत्रोके जाल और उससे आर्थिक-व्यापारिक- औद्योगिक शोषण, लोर्ड मेकोलेके अंग्रेजी शिक्षणके परिणाम रूप सास्कृतिक और धार्मिक भ्रष्टता एव अराष्ट्रीयता तथा बर्बरताका

प्रसार, पश्चिमी चकाचौंधके चक्करमे विवेक-शून्यता, आर्यसमाजी-ब्रह्मसमाजी-सीख आदिका भी जोरोसे-प्रचड़ प्रभावादिने समाजको दिग्भ्रांत कर दिया था । ऐसेमें एक कोनेसे एक भीड़-भंजकके करुणा सभर नयनोंसे अमृतधारा सदृश स्नेह- सरिता फूट पडनेको मानो लालायित हो रही थी । "He saw that true Jainism was lost in hoary antiquity. The indepedence of character, wide outlook beyond death, tolerance for all differences of opinion and thought, had all been smothered under the dust and storm, bigorty and persecution of the rules and the political struggle of the people for existence"[39] इन परिस्थितियोका आकलन मुनिराज श्री चरण विजयजी म के शब्दोमे - "सर्व दर्शन निष्णात् श्रीआत्मारामजी म. सा. आ वीसमी सदीना एक समर्थ महान विप्लववादी तरीके मशहूर हता । अनेक वहेमो, गतानुगतिकता अने संकुचितताओ पोतपोताना अड्डाओ जमावीने समाजमां बेठा हता, अनेक अनिष्ट, रिवाजो- मान्यताओ-पोताना अचल आसनो बिछावीने बेठा हता; अनेक प्राणशोषक अने खराब रूढियो पोतानुं दैर्घ्य साम्राज्य निःशंकतया प्रवर्तावी रही हती, तेवा घोर अंधकार समयमां श्री आत्मारामजी म. कोईनी पण परवा कर्या सिवाय शुद्ध सनातन मार्गनी सिंहगर्जना करी-ए बधाने एकले हाथे विदारी नांख्यां; समाजमां पुनः नवचेतन रेड्युं । ए सिवाय समाजमां अनेक अंधाधूंधीनी कुप्रवृत्तिओ चाली रही हती, तेनो रदीओ सशास्त्र प्रमाणथी आपी जनताने पोताना कर्तव्य सन्मुख आणी ।"[40]

आपके दीर्घ-दर्शी चक्षुपटल समक्ष जो चित्र अकित था, उससे आपने स्पष्ट निश्चय कर लिया था कि अगर समाजको इन सबसे ऊपर उठाना है–उनकी दीन हीन हालातसे उनका उद्धार करना है, उनका यथार्थ स्वरूप उन्हे पुनर्प्राप्त करवाना है--गहरी निंदमे सोनेवाले इस समाजमें जागृति लानी है तो बिगुल बजाने होंगे ज्ञान गाथाओंके; ढोल पीटने होंगे, पुरातन विद्वद् अस्मिताओके, गर्जना करनी होगी शिक्षा प्रचार-प्रसार और उसके प्रताप-प्रभावकी । मंजिल निश्चित हुई; मार्ग निर्धारित किया और लक्ष्य प्राप्ति हेतु उस गरीब निवाजने उस ओर कदम बढाये । उनके इन्हीं खयालातका एहसास हमें श्री मथुरदासजीके वाणी विलासमें प्राप्त होते हैं-यथा-"शिक्षाकी उन्नतिको जैन समाजके अभ्युत्थानका प्रबल साधन समझते हुए ही प. पू. श्रीमद्विजयानंद सूरिजीमके हृदयमें एक विशाल शिक्षण संस्था खोलनेकी भावना उदित हुई थी ..... शिक्षण संस्थायें और विशाल सरस्वती भवनकी स्थापना, जैनधर्मके साहित्यिक, ऐतिहासिक तत्त्वोंकी खोज (संशोधन), उत्तमोत्तम ग्रन्थ-पत्र-पत्रिकायें आदिका प्रकाशन, जैन समाजकी कुरूढियोंका निवारण, पारस्परिक संघका संगठन दृढ करना-- आदि जैन समाजकी उन्नतिके लिए परमावश्यक बातें है । धीमान् एवं श्रीमान् इन बातोंकी ओर ध्यान देकर जैन समाजको सबल बनायेंगें ।"[41]

श्री आत्मानदजी म सा अपने इन विचारोंको प्रवाहित करके व्यवहारमें उसके प्रत्यक्षीकरणके लिए कृतनिश्चयी थे । सत्य-सुधारक इस महारथीका अगद पॉव तत्कालीन विरोध- बवडरो या समाजमेसे होनेवाले सामान्य आधी-तूफानोसे चलित होनेवाले नही थे । उन्होनें विविध प्रसगोपात अपनी प्रावचनीय उपदेशधारा, कमनीय कलमसे आविर्भूत जैन तत्त्वादर्श, अज्ञान तिमिर भास्कर, जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर, तत्त्व निर्णय प्रासादादि ग्रन्थालेखनादि विविध प्रचार-प्रसारके माध्यम द्वारा समाजके वहम-अधविश्वास-कुरूढि-परम्पराये-भ्रान्तिजन्य जडतादिके उन्मूलन हेतु जनप्रवाहसे विरुद्ध दिशाकी ओर प्रचड पुरुषार्थ प्रारम्भ किया । तत्कालीन जन मानस-प्रवाहको सूक्ष्म एव पारदर्शी दृष्टिसे तीक्ष्ण विचारधारास मूल्याकित करनेवाले महामहिम-समयज्ञ सतने, अपने वज्रमय-कार्यदक्ष-दृढ मनोबलसे समाजको इन गूढ गहवरोसे उबारनेके लिए पथ प्रदर्शित किया और स्वयके स्थितप्रज्ञ आचरणोसे ऐसे समतारसको बहाया कि उन परपरित रूढियोके विनाशकारी झझावातसे उत्पन्न प्रकोप रूप विरोधके बादल अपने आप बिखर गये । इतना ही नही जन समाजने उनके सामने सर झुका दिया ।

"There was strength, firmness and gentleness, in his voice. He was regular in his habits, for sighted and liberal in views ... . He advised inter-dining and inter-cast mar-

riages between different sects and sub-sects of Jains ... As a result of his preachings **many Hindus, Muslims and Sikhs gave up meat eating**, hunting and wine-drinking..... His **message** to mankind was to follow truth unflinchingly lead an active life duty and do to **others** as they wish to be done by."[४२]

इस प्रकार बाल विवाह, विधवा विवाह, आंतर्जातीय विवाह, फिजूल खर्चवाले भोजन समारभ, साधर्मिक वात्सल्य, क्षुल्लक मतभेद या विचारभेदोके कारण होनेवाले जैनकौमके विभाजन, अज्ञानता-धार्मिक और व्यावहारिक निरक्षरता-पर्दाप्रथा आदि अनेकविध तत्कालीन कुरूढ़ियोको हटा कर समाजोत्कर्ष हेतु उन्होने डटकर प्रयत्न किये। समाजमे विभिन्न जातियोमे जो अलगाव दृष्टि-गोचर होता था, उसके प्रति आपको सख्त नफरत थी । उनके विचारसे -"**जितने मनुष्य जैनधर्म पालते हों, उन सर्वके साथ अपने भाईसे भी अधिक प्यार करना चाहिए ..... इस कालकी जैनधर्मको पालनेवाली सर्व जातियाँ श्री महावीरसे ७० वर्ष पीछे और वि. सं १५७५ साल तकके जैनाचार्योने बनायी हैं । तिनसे पहिलां चारों ही वर्ण जैनधर्म पालते थे, उस समयमें जातियाँ नहीं थीं ..... जो अपनी जातिको उत्तम मानते हैं, वह केवल अज्ञानसे रूढि चली है ..... जातिका गर्व करनेवाले जन्मांतरमें नीच जाति पायेंगे । ..... अब भी कोई समर्थ पुरुष सर्व जातियोंको एकठी करें तो क्या विरोध है ?**"[४३]

तत्कालीन युगकी वह मानो आवश्यकता थी, जो दार्शनिक चिन्तन और धार्मिक प्रवचनके साथ कदम मिलाते हुए इहलौकिक उलझनोकोभी सुलझाये. दलित-पीडीत वर्गके सुधार-परिष्कार करनेके लिए अतीतके इतिहास और धर्माख्यानोंके सबलके सहारे नूतन दृष्टिकोणको पेश करे । "**जैन समाजमें वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक कुरीतियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया** । और उन्हे दूर करनेके लिए प्रशस्त मार्ग **दिखाया । ..... उपरोक्त सब बातोंसे प्रकट है कि वे अपने युगके धार्मिक नेता ही नहीं बल्कि समाज सुधारके अग्रदूत थे । उन्होंने समाजमें फैली कुरीतियोंका मूलोच्छेद करनेके लिए भरसक प्रयत्न किये** ।"[४४]

<u>*व्यवहारिक*</u>—तत्कालीन समाजमे व्यावहारिक रीति-नीतियोमे भी परिष्कारकी आवश्यकताको अनुभूत करते हुए उन्होने एलान किया कि, तीर्थंकर परमात्माका श्रद्धालु—उनका भजनीक या पूजक—कोई भी हो वह अपना धर्मबंधु है, उसके साथ मतभेद रखना, ऊँच-नीचका व्यवहार रखना यह अत्यत अयोग्य है । जैसे पचमहाव्रत अंगीकरण पश्चात् नूतन दीक्षित साधु; सर्व साधु समाजमे एक समान अधिकार पाता है—समान व्यवहार पाता है, वैसे ही जैनधर्म स्वीकारने पर वे नूतन जैन भी सर्व जैनके समान बन जाते है । ... साथ रोटी-बेटीके व्यवहारमें भेद रखना अनुचित ही है । "**पारस्परिक एकतामें ही लाभ है और उसीमें शक्तिका रहस्य है । स्मरण रहें शास्त्राकारोंने श्रीं संघका पद बहुत उच्च किया है । श्री संघके सामने प्रत्येकको मस्तक झुका देना चाहिए** ।"[४५]

इसके अतिरिक्त शादी-ब्याहके फिजूल खर्च, दीक्षा-प्रतिष्ठादि धार्मिक प्रसगो पर अथवा गुर्वादिके वदनार्थ आये आगतुक-स्वधर्मी भाइयोके भोजन-प्रबन्धमे सादगी और फिजूल खर्च त्याग, प्रासगिक लेन-देनमे आडबरोका त्याग-आदिके बारेमे—आप बारबार अपने प्रवचनोमे एव ग्रन्थोमे परामर्श देने रहे है । अमृतसरकी प्रतिष्ठावसर पर पू.श्री आत्मानदजी म.सा.ने तजुर्बा किया कि, इन प्रसगो पर ठाठ-बाटका यह तरीका साधनहीन भाइयोके लिए सोचनीय परिस्थिति निर्मित कर सकता है । इससे धार्मिक उत्सवोके समय स्वधर्मीके प्रबन्ध करनेमे वे स्वयको अशक्त मानकर सकोच करेगे, और उन लाभोसे वचित रह जायेगे । अत उन्होने श्री सघको चेतावनी देते हुए कुछ प्रस्ताव पारित करवाये-यथा "**(१) श्री गुरुदेवोंके दर्शनार्थीके आतिथ्य सत्कार प्रेमपूर्वक दैनिक-सादा भोजनसे करना । (२) प्रतिष्ठादि अवसर पर तीन दिन (प्रतिदिन) केवल एक समय मिठाई परोसना-शेष सादा भोजन। (३) दीक्षादि प्रसंगों पर एक दिन, एक समय ही मिठाई-शेष सादा भोजन (४) साधु-साध्वीके स्वर्गवास अवसर पर सादा भोजन देना (५) प्रसंगोंमें रिश्तेदारोंसे लेन-देन प्रथा बंद करना । इसके अतिरिक्त विवाहादि प्रसंग पर खर्च कम करना-बरातियोंकी संख्या कम करना आदि** ।"[४६]

जिन-शासन सेवा उस सच्चे भेखधारी द्वारा प्रेरित और प्रतिबोधित-जैन सिद्धान्तोमे निपुणता प्राप्त करके **"विश्व-सर्वधर्म परिषद"मे जैनधर्मके प्रतिनिधि रूपमे जाकर जैन तत्त्वके** और **सिद्धातके स्याद्वाद एव अनेकान्तवाद, निश्चयनय और व्यवहारनय,** प्रतिमा **पूजनके रहस्यादि** अनेक विषयक पाश्चात्य विश्वके अज्ञानान्धकारसे **बंध पड़लोको खोलकर** अपनी तीव्र मेधा तथा बुद्धि प्रतिभाके चमकारसे जैनधर्मकी दीप्र ज्योत-प्रभाको प्रकाशित **करनेवाले: डकेकी चोट पर जैनधर्मको गौरवान्वित बनानेवाले श्री वीरचदजी गाधी, बार.एट.लॉ -को, जब बम्बई जैसे सुधारक और स्वातंत्र्य प्रेमी शहरके जैन समाजके कुछ** सदस्योने, केवल परदेशगमनकी परपराके **निषेधात्मक** दस्तूरको पकडकर जैनसघ **बाहर** करनेका निश्चय किया, उस समय भाविके भीतरमे दृष्टिपात करनेवाली वेधक नजरसे दृष्ट दृश्यको आपने जिस अदाजसे प्रस्तुत किया और श्री सघके उस विरोधको नीरव किया यह भी ज्ञातव्य है—**"याद रखना, धर्मके वास्ते श्रीयुत गांधी तो समुद्र पार-अमरिका, चिकागो धर्म परिषदमें गया है, मगर एक समय थोड़े ही अरसेमें ऐसा आवेगा कि, अपने मौज-शौकके लिए, ऐश आरामके वास्ते, व्यापार रोजगारके लिए समुद्र पार-विलायत आदि देशोमें जावेंगें उस वक्त किस किसको संघ बाहर करोगे?"**[१३]

इस प्रकार एक मत प्रवाह चला आता था कि, सूत्रागमको न कोई छाप सकते है न छपवा सकते हैं, न उन्हे छापने-छपवानेवालोकी अनुमोदना हो सकती है । न कोई श्रावक-गृहस्थ उनका अभ्यास कर सकता है । ज्वार सदृश इस लोकप्रवाहसे विरुद्ध दिशामे उस महापुरुषने प्रतिघोष दिया । डॉ हॉर्नले जैसे विदेशी सशोधको और जिज्ञासुओकी उन सूत्रागम विषयक शका-समस्याओका समाधान देकर जैनधर्मकी प्रभावनाकी पुड़ियाँ वितरित की थी । इनके ऋणको याद करके उन विद्वानोने भरपेट प्रशसा पुष्पोसे उन्हे सम्मानित किया था **(जिसका जिक्र इस शोध प्रबन्धमें अन्यत्र अंकित किया गया है ।)**

स्वातत्र्य सेनानी सुरीश्वरजीने अपने एक पत्रमें तत्कालीन साधु समाजमे प्रचलित मान्यता—'श्रीभगवती सूत्रके योगोद्वहन किये बिना कोई भी साधु नूतन दीक्षितको छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान नही कर सकते हैं'—इसकी असगतता और जडताको किस प्रकार विश्लेषित किया है, और उसे किस प्रकार अर्वाचीन मोड दिया है, यह अनुमोदनीय-प्रशसनीय एव ज्ञातव्य है । अपनी कुछ न्यूनताओको प्रकट करनेके पश्चात् वे लिखते हैं—**"इत्यादि भगवंतकी बहुत आज्ञाओंका मैं विराधक हूँ । इस वास्ते मैं तो जिनराजके चरणोंका सरण ही अपने उद्धारका कारण समझता हूँ । बाकी भगवंतकी आज्ञा तो निकटसंसारी जीव ही पूरी (पूर्ण रूपेण) पाल सकते हैं...... थोड़े दिनोंसे जो कोई रूढि चलती करी है, तिसको मैं तपगच्छकी समाचारी नहीं मानता हूँ, और पूर्वाचार्योंके पुस्तक देखनेसे यह भी सिद्ध होता है कि, योग वहनेकी रीति एक सरिखी अविच्छिन्न नहीं चली आयी है ..... जैसी जैसी द्रव्यक्षेत्रादिकी सामग्री मिलती है, तैसी तैसी प्रवृत्ति होती है । रूढि पकड़के बैठे रहना यह सुज्ञोंका काम नहीं है ।** "[१४] वस्तुत ये न्यूनताये भी उनकी अपनी नही, तत्कालीन समाजकी-श्री सघकी अव्यवस्था और अराजकताके कारण व्याप्त थी—सर्व साधु समाजकी थी और उसके प्रति आचार्यश्रीजीके दिलमे तीव्र वेदना भी थी, अत उन्होने 'जिनाज्ञा'को ही अपने उद्धारका कारण माना है। एक क्रान्तिकारी सुधारक विचारधारी सदृश, उन्होने रूढियोके सुधारकी ओर अपना सवेदन उद्घोषित किया। इन्हीसे उनकी स्वच्छद नही—स्वतत्र विचारधाराकी शीतलता-शुद्धता प्रस्फुटित होती है ।

वास्तविक रूपमे साधु हो या श्रावक, जैन हो या जैनेतर—मानवमात्रके लिए शुद्ध व्यवहार ही हितकारी है-इसकी परम आवश्यकताका स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते है-**"व्यवहार शुद्धि जो है सो ही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धन भी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है उसका अन्न शुद्ध है, जिसका अन्न (आहार) शुद्ध है उसकी देह और वृत्ति शुद्ध है, जिसकी देह और वृत्ति शुद्ध है वह धर्मके योग्य है। जो व्यवहार शुद्धि न पाले, व्यापार शुद्ध न करे, वह धर्मकी निंदा करनेसे स्व-परको दुर्लभ बोधि करते हैं।"**[१५] व्यवहार और अर्थका अतीव निकट, सबध होता है, अत गुरुदेवके अर्थक्षेत्रान्तर्गत उपकार भी दृष्टव्य हैं।

_आर्थिक_–जैनधर्मका वैशिष्ट्य उसकी अपनी धारण सिद्धान्त प्रणालीके बल पर चमकता है । तदनुसार **किसी भी व्यक्तिको जीवनमें करणीय चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ,** काम, **मोक्ष–माने गये हैं । इनमे** आदि-**अंतके दो पुरुषार्थ अध्यात्मके स्तभ है,** तो **मध्यके दो भौतिकताके** आधार । फिर भी **धर्मके** साथ अर्थको **और मोक्षके साथ** कामको जोड़कर विशिष्ट **प्रणालीका** सृजन जैनधर्म द्वारा हुआ है । इन युग्म द्वयसे **यह सिद्ध करनेका प्रयास हुआ है** कि अर्थ **(धन) प्राप्ति** भी बिना धर्म **अशक्य है,** एव **धार्मिक** भावनाकी **शून्यतामें प्राप्त धनलाभ** आत्माका **एकान्तिक शत्रु बन बैठता है** । तो **मोक्षके** साथ कामका युगल **शिक्षा** देता है कि, विश्वमें कमनीय काम (इच्छा-कामना-वासना) केवल एक ही होना चाहिए–महज मोक्ष प्राप्ति--अतिरिक्त मोक्षके, किसीभी प्रकारकी कामना जीवात्माके लिए ससार वृद्धि और अतत परपरासे दुःख वृद्धिका हेतु बन जाती है । मोक्ष प्राप्तिके पुरुषार्थमे ही सर्व एषणाओ-अपेक्षाओ और आशाओका सतुलन स्थित होता है । अत अध्यात्म और भौतिकता, निश्चय-व्यवहार-दोनो एक आत्मासे सलग्न परस्पर पूरक है ।

इस प्रका अर्थप्राप्तिमे धर्मको अवलबन रूप दर्शाते हुए धर्मोपदेशकोने अर्थकी आवश्यकताके साथ क्षुल्लकताको भी प्रदर्शित कर दिया है । धन-प्राप्तिके लिए जैनधर्मशास्त्रो द्वारा लक्ष्मण-रेखा खिची गई है। केवल 'वैभव' नही लेकिन 'न्याय सम्पन्न वैभव' प्राप्तिको गृहस्थ धर्मका प्रमुखगुण फरमाया गया है। उसीको लक्ष्य करते हुए आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानद सुरीश्वरजी म सा "जैन तत्त्वादर्श" ग्रन्थके नवम परिच्छेदमें अर्थार्जनके उपायोका विस्तृत विवरण देते हुए लिखते हैं, -"**सच्चा श्रावक निर्लोभी और पक्षपात रहित होना चाहिए ..... अधिक धनप्राप्ति होने पर भी अभिमान न करें और धनहानि होने पर खेद न करें; न धर्मकरणीमें आलस्य करें-क्योंकि, जन्म जन्मांतरके पुण्य-पापोदयसे संपदा-विपदा आती है, इस वास्ते धैर्यका आलम्बन श्रेष्ठ है ..... दुर्भिक्षमें अन्नका अधिक मोल न लें, अधिक व्याज न लें; किसीका गीरा पड़ा धन न लें, खोटा तोल-माप, न्यूनाधिक वाणिज्य, भेल-संभेल, अनुचित मोल या व्याजादि न लें, दूसरोंका व्यापार भंग न करें, परवंचकपना वर्जे, जूठ सर्वथा न बोलें, न्यायसें धनोपार्जन करें ।**"[50] 'न्याय सम्पन्न वैभव' प्राप्तिसे श्रावक अधर्म-राजद्रोह-लोकविरुद्धतासे बचकर पाप-बंधसे त्राण उपलब्ध करता है ।

विश्व व्याप्त अर्थव्यवस्थामे पारस्परिक समानताके लिए 'न्याय सपन्न वैभव'के साथसाथ, दान भावना अर्थात् धन-त्याग-वृत्तिका उपदेश देते हुए आपने कहा कि -"जद लाभ **हो जावे, तदा चिंतानुसार मनोरथ सफल करें; क्योंकि व्यापारका फल है धन होना, अरु धन होनेका फल है धर्ममें धन लगाना, नहींतो व्यापार करना-सो नरक, तिर्यंच गतिका कारण है । जो धर्ममें खरचे वो धर्म-धन, जो धर्ममें न खर्चे, वो पापधन कहा है । ..... इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनको दानादि धर्ममें लगाना चाहिए ।**"[51]

पाश्चात्य देशोके धनाढ्य और धनहीन, राय और रक्के मध्य जो अनमिट फासला दिखाई देता है, उसे मिटानेकी जितनी कोशिशे होती हैं मानो उतनी ही तीव्रतासे बढ़ता जाता है । जिसका असर शनैःशनैः पूर्वके देशोमें भी फैलने लगा है । उस कशमकशका उपाय जैनधर्मानुसार गहन एव विशद चिंतनधाराके प्रवासी परम करुणामय श्रीआत्मानदजी म.सा.ने अपने चिंतन सीकरोमे प्रतिबिम्बित किया है। उन्होने दर्शाया कि, हमारी अतस्तलकी गहराईसे स्वस्थ समाज रचनाकी झकारे-पुकारे-गर्जनाये उठे, समाजकी हर व्यक्तिको योग्यतानुसार समान अधिकार मिले, सभीको जीवनयापन योग्य प्राथमिक आवश्यकताये साहजिक सरलतासे प्राप्त हो सके और सभी आत्मकल्याण कर सके-यही हमारा कर्तव्य है । उनकी दीन-हीन-क्षीण-निर्माल्य मनोदशा, उन्हे निष्पाप जीवनसे विमुख करेगी । यही समझो कि, उनको ऊपर उठाकर आप स्वयको गिरनेसे बचा रहे हो । उनको दान देकर, आप निजात्माको लाभान्वित कर रहे हो । अगर साधर्मिक बधुको गले न लगाया, तो किसी अन्यके प्रति आपके दिलमें स्नेह सरिता कैसे बहेगी ? "**जिस गांवके लोग धनहीन होवे और श्रावकका पुत्र धनहीन होवे, तिसको किमीके रोजगारमें लगाकर तीसके कुटुंबका पोषण हों तैसे करें । जिस काममें सिदत हों उसमें मदद करना–स्वामी वात्सल्य है ।**"[52]

इसके साथही दान किस प्रकार, कैसे पात्रको, किस विधिसे देना अभीष्ट है उसे स्पष्ट करते

हुए आपने फरमाया कि, -"**किसी लाचार गरीब पर दया करक उसे खानेको भोजन या पहननेको वस्त्र देना--अनुकंपा दान कहलाता है । ऐसे दानका फल हमेशां शुभ होता है, किंतु.....प्रायः भिखारियोंका रूप अंदर कुछ और बाहर कुछ होता है, वे साधुके वेशमें धोखा-चालाकी करते हैं, अपने पास स्त्रियाँ रखते हैं, व्यभिचार करते हैं, मांस-मदिराका त्याग नहीं करते, चरस-गांजा आदि उडाते हैं । तरह तरहके स्वांग बनाकर लोगोंको लूंटते हैं । चरित्रसे पतीत ऐसे लोगोंको भीख देना कुपात्र-दान है । इससे लाभके स्थान पर हानि होती है। .... अगर कुछ देना हो तो विवेकपूर्वक तसल्ली करके अपने सामने खाना खिलायें ।**"[54]

इस प्रकार अर्थप्राप्ति और दान एव साधर्मिक (स्वधर्मी) वात्सल्य आदिको धर्मकरणीके रूपमे समझाते हुए जैनधर्मकी विश्व बधुत्वकी भाननाका भी परिचय करवाया है, तो दूसरी ओर उन निर्धन या कम भाग्यवानोको भी उनका जीवन-राह प्रदर्शित करते हुए नसीहत दी है कि अपने खर्चको हमेशां आमदनीसे कम रखो, सच्चाई और ईमानदारीसे जीवन-यापन करो उसीमे स्वमान व कल्याणका रहस्य है ।

<u>शैक्षणिक</u>--प्राचीनकालसे आज तक.. अनुभवोको नजर-पट पर उपस्थित करने पर तजुर्बा यही मिलता है कि, किसी भी देश-जाति-धर्मकी सस्कृति और सभ्यताकी रक्षा केवल उसके ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिकादि परिबलोंसे निसृत ज्ञानगगांके प्रवाहोसे ही मुमकिन है । जब वह ज्ञानगंगा रुख बदलती है, पतली पड़ती है-या सूख जाती है तब उसका अस्तित्व खतरेसे खाली नही । मुस्लिमोके अत्यत आक्रामक धर्मोन्मादका भी भारतीय सस्कृति द्वारा प्रतिरोध हो सका, यह केवल ज्ञानदशाके ही बल पर, आस्थाके स्थिरत्वसे हुआ । उनके द्वारा एक मदिर भग्न होने पर अन्य अनेक मदिरोका निर्माण होता था, क्योकि ज्ञान-भास्करका आलोक फैला हुआ था-आस्था अडोल थी । किन्तु, निरन्तर उन आक्रमणोके कारण समस्त भारतवर्षमें राजकीय अव्यवस्था हो गई । साथ ही शासकोकी स्वार्थांधता-क्रूरता-हवसकी लालसादिके कारण नैतिक पतन और परस्परकी ईर्ष्या-द्वेष-विलासिताके व्यामोहसे व्याप्त वातावरणमे आर्थिक असतुलनका व्याप अपनी चरमसीमा पर पहुँचा था । ऐसे अवसरोमे ज्ञान-विज्ञान या कला-कौशलका पोषण ठप होना स्वाभाविक था । सर्वका ध्यान स्व-सलामतीकी ओर केन्द्रित था । सर्वत्र जानमालकी सुरक्षा-जीवनयापनके साधन जुटानेकी समस्या, सामाजिक मान-प्रतिष्ठादिके सरक्षणादिके लिए प्रत्येक व्यक्ति सघर्षरत था, और उनमे ही स्वयंकी तन-मन-धनकी समस्त शक्तियाँ व्यय हो रही थी । ऐसेमे ज्ञान-विज्ञान-कला या धर्म-ध्यानकी ओर दृष्टिक्षेप करना या उसका खयाल आना भी दुरूह था । लेकिन

समय सतत परिवर्तनशील होता है । कालचक्र अरहट्ट सदृश ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपरकी ओर चक्रित होता रहता है । अत विश्वके उस शाश्वत सत्यानुसार राजकीय परिस्थितियोने पलटा खाया, जिसका असर सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक हालातो पर हुआ । एक नूतन लहर आयी और उन उत्तापोसे उबारनेवाले राहकी अलप-झलप दिखा गई । इससे धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोमे भी चैतन्यका सचार हुआ, सुषुप्तावस्थाका त्याग करके कई धर्मनेताओंने भी समाजकी अगवानी की । वे अपनी सुदूरदर्शी पैनी दृष्टिसे अनुभव कर रहे थे--<u>समाजकी सस्कारिता और धार्मिकताकी रीढ केवल ज्ञानालबनसे ही वज्रतुल्य बनती है</u>-जिससे जनजीवनसे धर्मकी अव्यवच्छिन्नता स्थायी बनती है। "विद्ययाऽमृतमश्नुते" अथवा "सा विद्या या विमुक्तये"- अर्थात् विद्यासे अमरता प्राप्त होती है अथवा विद्या वही है जो हमे विविध अनुचित बधनोसे विशेष रूपमे मुक्ति दिलाती है । उपनिषदके इन वाक्योसे विद्याका स्थान जनजीवनमे किस प्रकारसे उपयुक्तता रखता है--यह स्पष्ट ही है । विद्यासे ही विवेक जागृत होता है । मनुष्यको पशुओकी तुल्यतासे ऊपर उठानेवाली ताकत-शिक्षा शक्ति ही है । सभ्य मानवसमाजका मेरूदड बननेकी क्षमता सुयोग्य शिक्षा-स्तभमे ही निहित है ।

जैन समाजकी ज्ञानके प्रति लापरवाही, विद्यार्जनमे प्रमाद-आलस्य-अनुद्यमको देखकर आचार्य प्रवरश्री आत्मानदजीकी तड़पती आत्मासे पुकार उठ पड़ती थी । अहमदाबादके श्री सघ समक्ष एक बार अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए आपने फर्माया था-"**यहाँ संघमें हर प्रकारकी सुख संपन्नता है, जन संख्या भी पर्याप्त**

है, शास्त्र भंडार मौजूद है, किंतु अफसोस, लाभ उठानेवाला कोई नहीं.....सबको साथ मिलकर जैन साहित्यकी रक्षा करनी चाहिए, पाठशालायें खोलनी चाहिए, जिससे नवयुवक शिक्षा प्राप्त कर सकें । क्या ही अच्छा हो कि व्यर्थमें पड़ी संपत्ति मंदिरोंके जीर्णोद्धार तथा शिक्षा-प्रचारमें लगायी जायें ।"[५४]

<u>*शिक्षागुटि-संजिवनी बुटी-व्यक्तिको अमरता प्रदान करती है*</u> । यही कारण है कि मानव-बालको जीवनके प्रभातकालमे इल्मके आदित्यके प्रकाशसे देदीप्यमान-कान्तिवान् बनाना आवश्यक माना गया है । शिक्षासे ही विवेक-चक्षुओंका उद्घाटन होनेसे विचारशील विश्वके आलोकित प्रागणमे शिक्षित मानव स्व-पर, शुभकर-आत्म कल्याणके साथ-साथ अखिल विश्वकल्याणके लिए कदम उठा सकता है । यह स्वीकार्य है कि उनके रूप विभिन्न हो सकते है, लेकिन उसके मूल अस्तित्वका इन्कार नही किया जा सकता । अथवा ऐसा इन्कार करना यह भारतीय सस्कृतिके साथ सरासर अन्याय है मि हटरके शब्दो पर गौर करे **"इतिहासके सभी युगोमें भारतवर्षमें राज्य प्रबन्ध अथवा राज्यकी सहायताके बिना ही किसी न किसी प्रकारकी लोकप्रिय शिक्षा-विधिका प्रचार था । भारतीयोंने मौखिक परंपरा और हस्तलिखित शास्त्रों द्वारा विश्वमें अद्वितीय और उच्च कोटिके साहित्यको सुरक्षित रखा । ..... शिक्षा प्रचारका कार्यभार प्रायः लोगोंके कंधों पर ही था।"**[५५]

<u>*अध्ययन अद्वितीय आर्ट है*</u> । शिल्पी (अध्यापक) के कुशल हाथो छैनीके कसबका कमाल होता है कि वह कुरूप-अनघड पत्थर (निरक्षर बालक), शिक्षाका सुदरता प्राप्त होनेसे स्वरूपवान् प्रतिमाकी सुरतसे सजकर समाजके नयनोका कल्याणकारी तारक बन जाता है । **"वस्तुतः सच्ची शिक्षा ही एक ऐसा अमोघ अस्त्र है, जिससे बौद्धिक दासता और नैतिक भ्रष्टाचार दूर किये जा सकते हैं । मुमुक्षु, ज्ञानपथका पथिक बनकर ही भौतिक बंधन तोड़ सकता है ।"**[५६] श्री. आत्मानदजी म सा के अभिप्रायसे साधु सस्थामे व्याप्त शिथिलाचार भी इसी अज्ञानताका कटु परिपाक है । शास्त्र-विहित पाच प्रहरके स्वाध्यायके प्रति व्यग्रचित्त, आगमाध्ययनसे विमुख, षट्दर्शनादिकी अभिज्ञतामें उदासीन-ये साधु जैनाचारके अमूल्य सिद्धान्तोसे अज्ञात और जैनेतर व्यवहारोसे अनभिज्ञ रह जाते हैं। उनके प्रमादाचरणसे वे समाजके लिए भारभूत बन बैठते हैं । कभी कभी उनका यहाँ तक पतन हो जाता है कि चारित्रसे भी पतीत हो जाते है । उनको रोकनेका फर्ज-सही राह पर लानेका कर्तव्य साधुओ (गुरुओ)के साथ साथ गभीर-समझदार गृहस्थका भी है । लेकिन उन आचार-व्यवहारके नियमोसे अज्ञात साधु व श्रावक समाज यह कर्तव्यपालन कैसे कर सकता है ? अत ऐसे शिक्षा-प्रचारकी ही महती आवश्यकता है । लेकिन तत्कालीन शैक्षणिक परिबलके व्यापने इस कर्तव्य पालनकी राहको श्रावकोके लिए अत्यधिक दुर्गम बना दिया है ।

ब्रिटिश राज्यकालमे मेकोलेकी शिक्षण-प्रणालीने धार्मिक–आचार-विचार–व्यवहार–समस्तको छिन्नभिन्न कर दिया है, मानो उनका अस्तित्व ही नेस्त-नाबूद होने चला है । अतिरिक्त ईसाई धर्मके अन्य सभी धर्मोंको निर्माल्य-अनघड-बर्बर, और साहित्यको कल्पना तरगोकी गपसप या स्वप्निल-पौराणिक कहानियाँ प्रमाणित करनेकी भरसक कोशिशे हुई । उन पाश्चात्यो द्वारा पौर्वात्य–जो कुछ भी है पुराना-कुत्सित और–सस्काररहीन माना गया । आत्मा-परमात्मा-धर्म-कर्म-पुनर्जन्म-प्रतिमापूजन आदिको केवल अर्थशून्य बकवास घोषित किया गया। उन पाश्चात्य सस्कारोके कारण अश्रद्धा और नास्तिकताकी आधी एव स्वछदता-स्वार्थ-उच्छृखलताके तुफानोने आध्यात्मिकता युक्त पौर्वात्य धार्मिकताका ध्वस कर दिया । इस शिक्षणविधिने भारतीयोका दिमाग उलटा दिया । हितचिंतक गुरुवर श्री आत्मानदजी म के शब्दोमे **"विदित होवें कि संप्रतिकालमें कितनेक लोग सांसारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपको सर्वसे अधिक अकलवत मानने लग जाते है. . . और कितनेक तो नास्तिक ही बन जाते है।"**[५७]

ऐसे शिक्षणका अन्यथा और परिणाम क्या हो सकता है, जब उनकी नीति ही गुलामोत्पादनकी थी। ई स १८३६मे मेकोलेके, अपने पिताको लिखे हुए एक पत्रमे इसके आसार प्राप्त होते हैं– **"हमारी शिक्षाका हिन्दूओं पर आश्चर्योत्पादक असर हुआ है, और कोई भी हिन्दू, जिसने इस शिक्षाको ग्रहण किया है,**

अपने धार्मिक तत्त्वोंका श्रद्धालु तथा भक्त नहीं रहता..... मेरा विश्वास है कि, हमारी शिक्षा पद्धतिको लोगोंने कुछ और अपनाया तो अबसे करीब तीस वर्ष पश्चात् बंगालके प्रतिष्ठित परिवारोमें एक भी व्यक्ति मूर्तिपूजक न रहेगा..... अर्थात् हमें अपनी चरमसीमा तक ऐसा भगीरथ प्रयत्न करना चाहिए कि हम अपने करोड़ों शासित भारतीयोंके बीच एक ऐसा समुदाय तैयार करें जो हमारी बात उन तक पहुँचा सकें । वह समुदाय रक्त-रंग और जन्मसे तो भारतीय होगा किंतु रुचि-विचार-भाषा और बुद्धिके दृष्टिकोणसे अंग्रेज ।"[५०] मेकोलेके इन भविष्य कथनोको भोले भारतीयोंने सपूर्ण सत्य सिद्ध कर दिखाया है । "<u>*उच्च विचार और सादा जीवन*</u>" के भारतीय जीवन-धारा प्रवाहको इस शिक्षण पद्धतिने छिन्न-भिन्न ही कर दिया जिसके विषाक्त फल वर्तमानयुगमे अधिकाधिक तीव्रतासे अपना विपाक प्रदर्शित कर रहे है।

इन परिस्थितियोमे आचार्य प्रवरश्रीके विचारसे व्यावहारिक शिक्षाके साथ धार्मिक शिक्षाका और धार्मिक शिक्षाके साथ व्यावहारिक शिक्षाका होना अत्यत उपयोगी है । दोनो एक ही पक्षीके दो पख समान है. समाजके लिए दोनोका समन्वय ही विशिष्ट उपकार और उपयोगी बन सकता है । केवल धार्मिक शिक्षासे गृहस्थ जीवन दुष्कर होगा और केवल व्यावहारिक शिक्षा स्वार्थ-उच्छृखलता-स्वच्छदता और नास्तिकता लायेगी। दोनोके सामजस्यसे मनुष्य अपनी आजीविका ईमानदारीसे अर्जित करेगा -"**विद्या वह जो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करें अर्थात् अध्ययन करें । अनपढ पग-पगमें पराभव पाता है, अरु विद्यवान् विदेशमें भी माननीय होता है। इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला सिखनी चाहिए । क्या जाने क्षेत्र-कालके विशेषसे किस कलासे आजीविका करनी पड़े। जब सर्व कला सिखनेमें असमर्थ हों, तब जिस कलासे सुखपूर्वक निर्वाह हों और परलोकमें सद्गति हों वह कला सिखें ।"**[५८]

परमोपकारी उन तारक गुरुवर्यने अपनी पैनी नजरसे भाप लिया था कि, ऐसी तत्कालीन, हानिकारक शिक्षाका प्रतिकार करनेके लिए केवल एक ही रामबाण उपाय है—धर्मकी श्रद्धाका दृढीकरण, जिसके लिए आजमानी होगी गुरुकुल शिक्षण प्रणाली, जो विद्यार्थीको पतीत पावन जीवनके लिए पवित्रता, स्वावलबन, उच्च विचार और सादा रहन-सहनादिसे पुष्ट सामर्थ्यशाली शाति-समता, पराये अपराधके प्रति क्षमा-प्रदाता सहनशील उदारता, विशिष्ट चारित्रिक गठन, स्वमानकी सुरक्षा एव गौरव, उत्तमोत्तम धार्मिकता, परमोपकारक सामाजिकता, धीरता-वीरता-गभीरतादि गुण प्रस्रवा शैक्षणिकता और स्वतत्र सदाशयी आर्थिक स्थिरता प्रदान करनेकी क्षमता रखती है; जो वर्तमान विषैले शिक्षणसे मुक्त करवाकर भावि भारतके कर्णधारोको जीवन विषयक, धार्मिक और सास्कृतिक क्षेत्रमे पोषक बनकर महान उपकारक बन सकती है ।

अत अपने जीवनकी अतिम सास पर्यत-सर्व जीवराशिसे अतिम क्षमापनादि करके जीवन-किताबको समापन करते करते भी उनकी वाणीसे उनके कृपाक्त हृदय कमल स्थित खयाल पुष्पोकी सुरभि प्रसारित हुई है -"<u>*वल्लभ ! लुधियानेवाली बात याद है न ! उसका पूरा पूरा ध्यान रखना । ज्ञानके बिना लोग धर्मको नही समझ पावेंगे !*</u>"[६०] (लुधियाना शहरमें एक बार एक क्षत्रिय भक्त द्वारा समाजको शिक्षित बनानेके लिए सरस्वती मदिरोकी स्थापना करनेके सूचन पर उन्होने फर्माया था कि श्रावकोकी श्रद्धा स्थिर करनेवाले श्रीजिनमदिरोकी आवश्यकताकी पूर्ति करीब करीब हो गई है और अब जीवनके उत्तरार्धमे शरीरने साथ दिया तो ज्ञानयज्ञकी ओर पुरुषार्थ करनेके लिए कटिबद्ध बनना है । लेकिन अपनी अतरेच्छाको साकार स्वरूप देनेके पूर्व ही कालचक्रके घूमने पर उनकी ख्वाहीश अधूरी रही । इस बातकी ओर इगित करते हुए उन्होने इसे अतिम अतरेच्छाके रूपमे प्रदर्शित करते हुए प्रिय प्रशिष्य श्री वल्लभविजयजीको सरस्वती मदिर स्थापित करके—ज्ञानयज्ञ प्रारम्भ करके—समाजको ज्ञान-प्रदानके लिए एलर्ट किया ।।

उनके विचारसे ऐसे उपयुक्त शिक्षा प्रबन्धके लिए यथोचित क्षेत्र पजाबमे केवल गुजरावाला ही था। यही कारण था कि वे सनखतराके श्री जिनमदिरजीकी प्रतिष्ठा करवानेके पश्चात् तुरत गुजरावाला पहुँचे। लेकिन, आपकी मनोकामनाको कार्यान्वित करनेवाला सूर्योदय आप न देख सके । अपना अपूर्ण कार्य पूर्ण करनेका कार्यभार श्रीमद्विजय वल्लभसुरीश्वरजीको सुपुर्द किया, जो उन परम गुरुभक्त पट्ट

प्रभावकने परिपूर्ण निष्ठाके साथ निभाया । आज अनेक स्थानो पर गुरुकुल-विद्यालय-कॉलेज-पुस्तकालय-पाठशालाये-ज्ञानभड़ारादि शिक्षण सस्थाये विद्यमान हैं, ये उन्हींके विचारोंका मूर्तरूप हैं । इसे सिद्ध करते हैं ये शब्द —"**यद्यपि गुरुदेवने पंजाबमें बहुतसे मंदिर निर्माण करवाये, तथापि उन्हें उतने ही कार्यमात्रसे संतोष न था, उनके हृदयमें इन मंदिरोंके पूजारी पैदा करनेकी भावना थी । उनके दिलमें एक कसक थी—प्रबल ईच्छा थी, कि इनके साथ कई सरस्वती मंदिर भी स्थापित किये जाये और उन्हें विशाल (विश्व) विद्यापीठ बनाकर समाजका कल्याण किया जाय । जब तक ज्ञानका प्रचार न किया जायेगा तब तक किया हुआ कार्य स्थायी नहीं रह सकता .. गुरुदेवके नाम पर कई शिक्षण संस्थाये, कई पुस्नक प्रचारक संस्थायें, कई पुस्तकालय-ज्ञानभंडारादि स्थापित हुए, जिनका संक्षिप्त परिचय पाठकोंको इस लेखमें मिलेगा ।**"[५१]

आचार्य प्रवरश्री आत्मानदजीकी भावनाके परिपाक स्वरूप सरस्वती मदिर ऐसे होने चाहिए कि जिसमे केवल श्रद्धायुक्त धार्मिकता न होकर ऐतिहासिकता-वैज्ञानिकता या अन्वेक्षिकताका आलोक भी हो, जिससे जैन सिद्धान्तोके अध्ययन और अनुसधानके लिए विश्वस्तरीय कार्य फलक पर एक आदर्श सस्थामे देश-विदेशके जैन-जैनेतर-प्रौढ एव अनुभवी विद्वान विशिष्ट परिशीलन करते हुए मानव जीवनकी पेचीदी समस्याओको सुलझानेका सौभाग्य प्राप्त करे । सम्यः (सच्चा) ज्ञान ही जीवन है, प्रशस्त प्रकाश रूप है, अत हमारे जीवनके दौरेमें हमे सशक्त बनानेवाली एव अन्य जाति-समाज या राष्ट्रके मुकाबलेमे स्थिर बनाये रखनेका सामर्थ्य प्रदान करते हुए धर्मज्ञानसे विभूषित करनेवाली जातीय शिक्षण सस्थाओकी अत्यावश्यकता हैं । इन्ही तथ्योको प्रस्फुटित कर्ता श्री मथुरदासजीके भाव देखे -"**शिक्षाकी उन्नतिको जैन समाजके अभ्युत्थानका प्रबल साधन समझते हुए श्री प.पू.न्यायांभोनिधि स्वर्गीय आचार्य श्री विजयानंद सुरीश्वरजीम.के हृदयमें एक विशाल शिक्षण संस्था खोलनेकी भावना उदित हुई थी । विद्वद्वर्य श्रीमद्विजय वल्लभ सूरिजी म.ने अपने गुरुवरकी भावनाको क्रियात्मक रूप देनेके लिए श्री आत्मानंद जैन गुरुकुल-पंजाब, गुजरांवालांकी स्थापना की थी । ..... पू. आचार्यश्रीजीकी शिक्षाप्रियता केवल इस संस्थासे विदित नहीं होती है, बल्कि श्री महावीर विद्यालय, श्री पार्श्वनाथ विद्यालय, अनेक गुरुकुल-बालाश्रमादि अनेक संस्थायें स्थापित करके आपश्रीने जैन समाजके उत्थानके अत्यावश्यक साधन—शिक्षाका विशेष प्रचार किया है ।**"[५२]

इन विविधलक्षी सरस्वती मदिरोके अतिरिक्त उन्होने शिक्षाके क्षेत्रमे अत्यत महत्वपूर्ण नूतन ज्ञानभडार-पुस्तकालयोकी स्थापनाये, प्राचीन ज्ञानभडारोके पुनरुद्धारके कार्य (उसके लिए आर्थिक योगदान-शिक्षण निधि फंड-आदिकी योजनाये), जीर्ण-शीर्ण फिर भी महत्वपूर्ण ऐसे ताडपत्रीय एव अन्य प्राचीन-उत्तम-अलभ्य ग्रन्थोकी प्रतिलिपियाँ तैयार करवानेके कार्यको भी गतिशील किया । श्री बनारसीदासजी जैनकी श्रद्धाजलि-सुमनकी झलक देखे -"**एक विद्वानका कथन है कि सच्ची युनिवर्सिटी अथवा रिसर्च इन्स्टीट्यूटके प्राण तो पुस्तक-संग्रह है । महाराजजी भी इस विचारसे सहमत प्रतीत होते हैं, क्योंकि गुजरांवालां नगरमें जहाँ वे सरस्वती मंदिर खोलनेके भाव रखते थे, वहाँ पं.बेलीराम मिश्रजी सं. १९३१मे शास्त्रोंकी प्रतिलिपि करने पर नियुक्त थे । प्रतिलिपिका यह कार्य बीस वर्ष तक चलता रहा । इसके अतिरिक्त पुस्तक भंडारको पूर्ण रूप देनेके लिए महाराजजीने सैंकड़ों प्राचीन लिखित और नवीन मुद्रित प्रतियाँ गुजरात-मारवाड़से पंजाब भिजवाई । इनके साथ पंजाबके यतियोंके ज्ञानभंडार भी मिले । इस प्रकार म.सा.ने पजाबमें पूर्ण रूपेण पुस्तक संग्रह कर दिया था ।**"[५३] इन अनेकविध कार्योमे अपना श्रेष्ठतम योगदान सुरीश्वरजीने जीवनपर्यत दिया । हम यह कह सकते हैं कि उनका आद्योपात जीवन—जीवनका प्रत्येक पल-शिक्षाके आदान प्रदानसे ही सलग्न था ।

वह समय था, जब शिक्षणक्षेत्रमे अन्वेषिकी दृष्टिने प्रवेश कर दिया था । तुलनात्मक, ऐतिहासिक अनुसधानोका साम्राज्य ससारभरमे फैला हुआ था । "**प्राचीनकालथी चाल्या आवता धर्म तरफ जोवानी अनेक दृष्टिओ होय छे । आजना जमानामां ऐतिहासिक दृष्टि प्रधानपद भोगवे छे ।**"[५४]

"**आपणो युग संशोधननो छे । घणुं बधुं साहित्य दटायेलुं पडयुं छे । तेने शोधी काढी तेमांथी मळता ज्ञानने प्रकट करवानी जगत समक्ष धरवानी पण एक मज़ा छे । तो क्षीर-नीर विवेचन दृष्टि केळवी परंपरा**

स्वीकृत के ...य गणाता तथ्योमां ज्या, जे कांई मिश्रण के ...वर्तन थयेलुं मालूम पड़े त्यां तेना यथार्थ तत्व-तथ्य सुधी पहोंचवानी दिशामां यथामति उद्यम करवो, ए पण एक अनेरो बौद्धिक विहार बनी रहे तेम छे ।"[१६]

ऐसे समयमें युग प्रवर्तक श्री आत्मानदजीके ज्ञान सरोवरमे उस संशोधन क्षेत्र फलकको सभालकर और ...र्जित कर-सवर्धित करनेवाले पुडरिक पद्म विकस्वर हो चूके थे । उनके प्रत्येक ग्रन्थोमे हमे उनकी उस विचक्षण-विलक्षण, परिमार्जनसे अकित अन्वेक्षिकाका अनुभव प्राप्त होता है । इनके *'बृहत् नवतत्त्व संग्रह, जैन तत्त्वादर्श, चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२, अज्ञान तिमिर भास्कर, तत्त्व निर्णय प्रासाद'* आदि ग्रन्थोमे हमे उनकी अनुसधान दृष्टिकी शक्तिकी अमिताभ आभाका स्पष्ट रूपेण परिचय प्राप्त होता है । इन्हो गुण सौरभसे आकर्षित स्वदेशीय और विदेशीय-अनेक विद्वद्वर्य भ्रमरोका गुजन इनके इर्द-गिर्द सुनायी देता था-यथा-बेवर, जेकोबी, ब्हूलर, पीटर्सन, होर्नले आदि । इन सभीमे से उनके ज्ञानोद्यानकी खुश्बूका यथेष्ट-सर्वाधिक आस्वाद डॉ हॉर्नलेने लिया था । उनके ज्ञानके आदान-प्रदानका सग्रह-जो पत्र व्यवहार रूपमे हुआ था, उन पत्रोका सकलन प्रश्नोत्तर रूपमे-*('प्रश्नोत्तर सग्रह', प्रका श्री जैन आत्म-वीर-सभा, भावनगर,)* नामक पुस्तकमे किया गया है । डॉ हॉर्नले उनके आगमिक ज्ञान और प्रत्युत्तरोकी सर्वांग परिपूर्णता-विषयलक्षिता-तर्कबद्ध सुरेखता एव अविलब नियमिततासे अत्यन्त प्रभावित हुए, परिणामत अपना सशोधित और अनुवादित आगम ग्रथ "उपासक दशाग-सूत्र" को उन उपकारीके पाद-पद्मो पर प्रशस्ति गान सहित समर्पित किया । इस तरह निर्विवाद है कि, तत्कालीन-अर्वाचीन युगकी आधुनिकताके साथ उस युगमे कदम मिलानेवाले वे अनुपमेय आचार्य प्रवर थे ।

वाचकवर्य श्रीउमास्वातिजीम विरचित 'श्रीतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' अनुसार मोक्षमार्गका प्रथम अग है स दर्शन अर्थात् सत्यके प्रति सपूर्ण श्रद्धा, सम्यक् दृष्टिबिन्दु अथवा श्री अरिहत परमात्माके प्रति अविहड आस्था और दूसरा है ज्ञान । तो श्रुतकेवली श्री शय्यभव सूरीश्वरजीके 'श्री दसवैकालिक सूत्र' अनुसार 'पढम नाण तओ दया'-प्रथम ज्ञान बादमे दयाका आचरण करना उपयुक्त है, क्योकि, बिना ज्ञान दया पालना असभव-सा बन जाता हैं । अत यह सिद्ध है कि ज्ञानका माहात्म्य जैन सस्कृतिमे अति प्राचीन कालसे अपनी चरम सीमा पर स्थित था और अर्वाचीन कालमे भी हैं । जैनधर्मके ऐसे उत्तमोत्तम ज्ञानराशिकी परम्पराका निर्वाहक साहित्य भी उतना ही समृद्ध है । ससार व्यवहारके विश्व प्रसिद्ध-प्रत्येक विषयक ज्ञानकी परिपूर्णतासे सुसम्पन्न जैन वाङ्मयके विषयमें जितना भी कहे अपर्याप्त ही है । आज भी जैन साहित्यमे निरूपित कई विषय ऐसे भी है जिनके विषयमे आधुनिक विज्ञान या वैज्ञानिक और विद्वान विश्लेषक या सशोधकोकी पहूँच नही-जिसके लिए केवल आधिभौतिक अन्विक्षण अपर्याप्त माने जाते है, जहाँ केवल आध्यात्मिक आराधना ही एक मात्र तदबीर हो सकती है—ऐसे उत्तमोत्तम साहित्यके अत्यत दयनीय हालातका चित्रण करते हुए श्री अमरनाथजी औदीचजी लिखते हैं "**The community altogether lost sight of this spiritual wealth, with the result that most of the literature was on the verge of being eaten up by vermins. Due to lack of attention several valuable manuscripts on palmleaves had been destroyed by white-ants, while some had become almost indecipherable**"

आचार्य प्रवरश्री आत्मानदजीम सा ने स्वय अपने 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थमे इस दुर्दशाको वर्णित करते हुए लिखा है **"मुसलमानोंके राज्यमें लाखों पुस्तकें** जला दी गई और जो **कुछ शास्त्र बचे हैं, वे भंडारोंमें बंद कर दिये गए हैं-जिनमें पड़े पड़े** गल गये हैं, **जो बचे है** वे भी **दो-तीन सौ वर्षमें गल जायेंगे-"**

इस अवस्थाको ज्ञानके प्रति सपूर्ण समर्पित-नेकदिल हृदय कैसे सह सकता है ? उनकी तडपती आत्मासे कसक उठी और कमर बाधकर वे उठ खडे हुए । उनकी अनुभवी निगाहोने उस परिस्थितिका ताग लिया और कागज कलमके-दो पखोके-सहारे उस ज्ञानपछीने ज्ञान-गगनमे स्वैर विहारका प्रारभ किया। उनकी प्रत्येक उडानसे नित्य नूतन लक्ष्योकी प्राप्ति होने लगी । उनकी त्रिविध साहित्यिक सेवाये—<u>सरक्षण समार्जन-सवर्धन</u>—जैन समाजके लिए सूचक, समयोचित और सार्थक सिद्ध हुई हैं ।

संरक्षण और समार्जन–इनके अंतर्गत उनके द्वारा किये गए कार्योंका प्रारूप निम्नांकित है । जो ज्ञानभंडार भूमिगृहोंमें-आलमारियों-सन्दूकोंमें बंद पड़े थे, आक्रामकोंके भय दूर होने पर भी दीर्घकालीन प्रमाद-आलस्य और अज्ञानताके कारण आध्यात्मिक समृद्धिको निहारनेवाले नयनपट बंध होनेसे ज्ञान प्रत ्का असर नहीं होता था, न किसीको कुछ सूझता था । पूर्वजोंकी उस अमूल्य साहित्यिक संपत्तिको अज्ञान जैनोंने कंजूसकी तरह कैद कर रखा था । यह समा था जब व्यक्तिके, उस ज्ञान-निधिके दर्शन करनेके प्रस्तावको भी शंकित नजरोंके बाणोंसे घायल कर दिया जाता था । 'Atmaramji prevailed upon the people to take the books out of the cellars and to let him inspect their conditon every effort was made by him to have them copied out where possible In some cases the books were repaired or rebounded and regular libraries were started for their proper care & upkeep He deputed some of his disciples to prepare lists of this literature for futher reference "

आचार्य प्रवरश्री ऐसी जाज्वल्यमान प्रतिभाके स्वामी थे कि समस्त जैन जाति उनके एक इशारे पर सर्वस्व न्योछावर करनेको तत्पर थी । अतः उस प्रतापी प्रभावका ही परिणाम था कि उन्होंने जैन संघोंके आधिपत्यवाले बहुमूल्य ज्ञानार्णवको, उनके प्रमुख सदस्योंको समझाकर और वैयक्तिक ज्ञानभंडारोंमें स्थित ज्ञानराशिके लिए उनके स्वामी–प्रत्येक व्यक्तियोंको समझाकर–उन सभीके अधिकारमें रहे उन आगमिक एवं शास्त्रीय कोषागारोंको खुलवा दिये । उनके विचारसे ज्ञानोद्यानकी सुरभि किवाडोंमें बंद कर देनेसे नष्ट हो जाती है–सुगंध दुर्गंधमें पलट जाती है–उद्यान उजड़ जाता है, उसे जितना भी खुला रखा जाय-उसकी सुवास वितरित की जाय, वह अधिकाधिक प्रफुल्लित और महकदार बनता है ।

उन भंडारोंको खुलवाकर उन्होंने उनका निरीक्षण किया । कई अलभ्य-अत्युपयोगी-अमूल्य ग्रंथोंकी प्रतिलिपियाँ करवायीं । कोई भी व्यक्ति अंदाजा लगा सकती है कि गुजरांवालामें केवल पं.श्री वेलीराम मिश्रजीने ही बीस साल पर्यंत प्रतिलिपियाँ करनेका कार्य किया । अतः बीस वर्षोंमें कितनी प्रतिलिपियाँ की होगी । ऐसे ही अन्य स्थलोंमें अन्य व्यक्तियोंके पास और अपने शिष्य-प्रशिष्योंके पास भी कई ग्रंथोंकी प्रतिलिपियोंका कार्य करवाया । बिस्मार पुस्तकें और पोथियोंकी मरम्मत करवायी और अनेक प्रकारसे हिफाजतपूर्ण उनको सुरक्षित स्थानोंमें रखा गया । उनके यथोचित उपयोगके लिए उन पुस्तकें–हस्तलिखित या मुद्रित या ताडपत्रीय–प्रतियोंकी सूचि तैयार करवाकर ज्ञानभंडारों व पुस्तकालयोंको व्यवस्थित किया या करवाया ।

ज्ञान-यज्ञ रूप इस जीर्णोद्धारके कार्यके लिए आर्थिक सहायता हेतु सबको प्रेरित किया, साथ ही साथ उसके पठन-मनन-निदिध्यासन करनेवाले जनसमूह और जैन संघको भी अनुप्राणित करते हुए साहित्य रसिक बनानेको यथाशक्य प्रयास किये जिसके अंतर्गत प्रमुख रूपसे प्राचीन भाषायें एवं लिपियोंके अध्ययन-अध्यापन और संस्करणके लिए विशिष्ट कार्य किये गये । आगम प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्य- विजयजीमने उनकी उन शक्तियोंको प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि **"स्वर्गवासी गुरुदेवना ज्ञानभंडारमां तेमना स्वहस्ते संशोधित अनेक ग्रन्थों छे । तेमां 'सन्मति तर्क' शास्त्रनी हस्तलिखित प्रतिने ए गुरुदेवे पोते वांचीने सुधारेली छे, जे सुधारेला पाठोने मुद्रित 'सन्मति तर्क'ना संपादकोए तेमनी टिप्पणीमां ठेकठेकाणे स्थान आप्युं छे पंजाब देशमां आजे स्थान स्थानमां स्वर्गवासी गुरुदेवना वसावेला विशाल ज्ञानभंडारो छे, जेमां सारभूत ग्रन्थोनो संग्रह करवा गुरुदेवे अथाग प्रयत्न कर्यो छे । महोपाध्याय श्री यशोविजयजी गणिजी कृत 'पातंजल योगदर्शन'-टीका, 'अनेकान्त व्यवस्था' जेवा अलभ्य-दुर्लभ्य प्रासाद ग्रन्थोनी नकलो आ भंडारमां विद्यमान छे जे बीजे क्यांय जोवामां आवती नथी । स्वर्गवासी गुरुदेवे विहार दरम्यान ग्राम ग्रामना ज्ञानभंडारोनी बारीकाइथी तपास करी अलभ्य ग्रन्थोना ज्यांथी मळी आव्या त्यांथी उतारा कराव्या छे । तेनाथी तेमनी अपूर्व साहित्य-परीक्षक सूक्ष्मेक्षिकानो परिचय थाय छे ।"**[५८]

इसके अतिरिक्त जैन साहित्यके प्रचार-प्रसार और अनुवाद-अनुसंधानादि कार्यमें भी हार्दिक दिलचस्पीके साथ सक्रिय मार्गदर्शन दिये और स्वयं भी कदम बढ़ाये । जैन परंपरानुसार आगम-अध्ययन योगोद्वाहक

साधु ही कर सकता है । लेकिन कुछ पुरातनुसंधानोके संदर्भके बल पर इस गतानुगतिकताको रुखसत देकर वे स्वय भी बिना योगोद्वहन आगम-सूत्रादिके अध्येता एव अध्यापक भी बने और पाश्चात्य-पौर्वात्य सभी जिज्ञासु विद्वानोंको उन रहस्योसे परिचित बनवाकर उनके अध्ययनमे सहयोगी बने, जिससे अनेकोको जैन साहित्यके अध्ययनमे प्रोत्साहन मिला । इस प्रकार हमारे इस विहगावलोकनसे प्रतीत होता है कि सूरिवर्य श्री आत्मानंदजी म.ने जैन साहित्यके संरक्षण और समार्जनके प्रति किस कदर पुरुषार्थ किया था। और अब हम निरूपित करते हैं उनके साहित्य सवर्धनको, जिसके लिए उनका समूचा जीवन समर्पित था ।

सवर्धन –तत्त्व और तथ्य गवेषक-तलस्पर्शी जिज्ञासु एव तर्कबद्ध शिष्ट आलोचककी प्रतिभा सम्पन्न सुरीश्वरजीकी हृदतत्रीकी झकारने सरक्षण और समार्जनसे ही तसल्ली न मानकर उस वीनको तीव्र और उच्च झनझनाहटसे निनादित सवर्धनमे कृतार्थता मानी । उत्तम पुरुष वह होता है जो पैतृक सम्पत्तिको वृद्धिगत करे । सूरि सम्राट श्री आत्मानदजीम.सा.ने इस तथ्यको सिद्ध कर दिखाया । स्वयने गणधर रचित आगम-शास्त्र एव गीतार्थ पूर्वाचार्य विरचित विविध विषयक ग्रन्थोका साद्यत अध्ययन किया–पचागीके सहारे पठन-मनन किया और सत्य गवेषक दृष्टिसे उनका परीक्षण करते हुए उस चिंतन-मननके रवैयेसे किये गये बिलोडनसे प्राप्त नवनीतको लोकभोग्य बनाने हेतु सरलतम प्रविधिसे प्रस्तुत करनेकी कोशिश की । उनकी ग्रन्थ रचनाओके सूक्ष्म अभ्याससे प्रतिफलित होती हैं, अनेक आगमशास्त्र एव जैन-जैनेतर ग्रन्थोके सदर्भोसे उनकी बहुश्रुतता, विशाल और गहन अध्ययन, वस्तु विवेचनाकी गभीरता, पदार्थोके वर्गीकृत सग्रह, सर्वधर्मका सर्वदेशीय अध्ययन तथा उससे निष्पन्न प्रखर पाडित्य। सुव्यवस्थारूढ समर्थ सुक्रान्तिकारत्व और चिंतन स्वातत्र्य । उनके ग्रन्थोके अध्ययनसे अध्येताको बिना आगमके अभ्यास ही अनेक आगमिक गूढ, सैद्धान्तिक तथ्योका सार सरलतया प्राप्त होता हैं । उनका धाराबद्ध प्रवाहित प्रवचन हो या अतरगभावावेगबद्ध भाषामे आलेखन हो, श्रोता या पाठक, आबाल-वृद्ध या विद्वान हो-समान रूपसे उसका उपभोक्ता बन सकता था । उनकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वकी प्रतिपादक विवेचना शैली ऐसी मनोहर थी कि छोटा बालक उसे उसी भावसे समझ सकता है, जिस भावसे एक विद्वान, अनेक साक्षर एव तत्त्व-गवेषक मत्रमुग्ध बनकर उसका आस्वाद लेते रहते थे और अधुना भी ले रहे है ।

अप्रमत्त आत्मानदजी म.के नित्य नूतन साहित्य सर्जनकी भाव लहरी पर नर्तन होता रहता था- वैदिक साहित्यका अध्ययन, श्रुतियॉ-उपनिषद-पुराणादिका पठन, इतिहासका अवलोकन, स्व-पर समयके दर्शनको लक्षित किया हुआ चिंतन-मनन, जिनसे निःसृत हुआ युक्तियुक्त अनेकान्तवाद एव स्याद्वादका मनमोहक आलेखन, जैनधर्मकी दार्शनिकता, सैद्धान्तिकता, क्रिया-कर्मठता मूर्तिपूजा और अहिंसक आत्मिक यज्ञकी सिद्धिमे प्राचीन शास्त्र और अर्वाचीन तर्कबद्ध उहापोह ।

इस क्षेत्रमे सबसे महत्त्वपूर्ण-यथोचित-लाभदायी जो कार्य हुआ, वह हैं हिन्दी भाषामे साहित्य सर्जन। वह युग था पाडित्य प्रदर्शनका । उन दिनोमे गद्य रचनाये होती थी प्राय सस्कृत या प्राकृतमे और पद्य रचनाये प्राय प्रादेशिक भाषाओमे–विशेषकर ब्रजभाषामे ऐसे वातावरणमे सस्कृत-प्राकृतके एक प्रखर-सिद्धहस्त विद्वानका खडीबोली-हिन्दी भाषामे साहित्य सर्जन करना–जिसका साहित्यिक स्वरूप भी डॉवाडोल था-अपने आपमे आश्चर्योत्पादक या अनहोनी घटना थी । लेकिन आचार्य प्रवरश्री आम्रतरु सदृश जितने उच्च कोटिके विद्वान थे उतने ही नम्र और भावुक भी थे । उनके परमोपकारी अतरात्माके निर्मल आकाशमे चमकते चद्रकी चादनीमे सभीको सराबोर कर देनेकी उनकी ख्वाहिश थी । वे चाहते थे कि जिनशासनके जिन सिद्धान्तोको पूर्वाचार्योंने सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रश मागधी-अर्धमागधी आदि अनेकानेक प्राचीन भाषाओमे निबद्ध किया है, उसे उन भाषाके अवबोधसे अबुध-सामान्य जन-जन तक पहुँचाया जाय, उनके अतरग एव वास्तविक मर्मको उन सरल और भद्र परिणामी जिज्ञासुओको समझाया जाय, भ. श्रीमहावीरके सत्य राहसे उन्हे परिचित करवाया जाय–जिनसे उनकी सम्यक् श्रद्धा सत्य धर्मके प्रति स्थिर बने । उन दिनो अधिकतर

समाजकी मातृभाषा-जनभाषा-हिन्दी थी, उस स्वभाषामें ही सही, उन्हे जैनधर्मके तत्त्वज्ञ बनाया जाय । अत उन तत्त्वगवेषक-समर्थ विद्वद्वर्यने अपनी उस अदम्य भावनाको मूर्तरूप देना प्रारम्भ किया । उन्होने अनेकविध विषयोका अनेक ग्रन्थ रचना करके उद्घाटन किया, जो जैन-जैनेतर, गवार या विद्वान, तत्वज्ञ-मर्मज्ञ या अल्पज्ञ-सभीके लिए समान उपस्कर्ता सिद्ध हुई ।

"जिस प्रकार मनुष्यकी बुद्धि और चारित्रका तेज उसके नेत्रोंमें प्रकाशित होता है, उसी प्रकार आत्मारामजी म.के अभ्यास, परिश्रम और प्रतिभाका आलोक आपको उनके देदीप्यमान ग्रन्थोंमें दृष्टिगोचर होगा । ये ग्रन्थ ही मौन रहते हुए भी हमेशाके लिए अमर रहनेवाली आत्मारामजी महाराजकी जीवित प्रतिमायें हैं । ये ही ग्रन्थ उस महापुरुषकी आत्माके तेजको आज भी अक्षर रूपमें एकत्र किये हुए है।"[१']

प्रत्येक साहित्यिक कृति तत्कालीन अवस्थाका परिचय देनेके साथसाथ उसके रचयिताकी अतरग आत्माका अभिज्ञापन करवाती है । उनमे छलकती भावनाये-दर्पणतुल्य-साहित्यकारके व्यक्तित्वके महद अशको यथार्थ रूपमे चित्रित करती है । श्री आत्मानदजीम का साहित्य भी उनके कीर्तिकलशको अम प्रदान करनेवाले अमृतकुभ तुल्य है । उनके ग्रन्थोमे 'बृहत् नवतत्त्व सग्रह', 'अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' जैसी विद्वद्भोग्य रचनाये, 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर', 'जैन धर्मका स्वरूप', 'जैन मत वृक्षादि' जन साधारण योग्य रचनाये, 'जैन तत्त्वादर्श' जैसी 'जैनगीता' समान सर्वांगिण उपयुक्त रचना और 'चिकागो प्रश्नोत्तर' जैसी विश्व-स्तरीय रचनाओका विविध रगी इन्द्रधनुषी सुशोभन है, तो विषय वैविध्य, दार्शनिक, वैचित्र्य, विषय निरूपण करनेवाली शैलीका वैविध्य भी अपनी अलप-झलप दिखा जाते है । उनके ग्रन्थोमे ईसाई-बौद्ध, वैष्णवादि हिन्दू धर्म-शीखादि ईतर धर्मोके धर्मग्रन्थोके सूक्ष्म अध्ययन और परिशीलन पश्चात् उनमे प्ररूपित असगत प्ररूपणाओका खडन किया है । अत उनके साहित्यकी शैलीमे विषय- प्रतिपादक शैली, खडन-मडनात्मक शैली (जिसमे सवादात्मक शैलीका भी उपयोग हुआ है ।), आलोचनात्मक शैली आदिका विषयानुरूप वैविध्य दृष्टिगोचर होता है ।

'*<u>नामूल लिख्यते किंचित्</u>*'-इस सिद्धान्तका उन्होने पूर्णतया पालन किया है । उनके साहित्यकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता ही यह है कि उनकी कृतियोका, उनमे निरूपित विषयोका आधार उनका सर्वांगिण-विशद अध्ययन, और उन प्राचीन शास्त्र एव ग्रन्थोके अकाट्य प्रमाणोको सशक्त तर्कबद्ध रूपमे प्रस्तुतिकरण। बालजीवोके लिए प्रारम्भिक-सरलतम शैलीमे विषय आलेखन करनेके पश्चात् विद्वद्वर्ग एव जिज्ञासु सशोधकोके लिए विवरित विषयके विस्तृत अध्ययन हेतु अन्य सहायक ग्रन्थोकी ओर इगित करते है । परिणामत **"उनकी सरल शैली, सुबोध उदाहरण और आकर्षक वर्णनसे गूढ विषयको समझनेमें भी कठिनाई नहीं होती और जिज्ञासु संशोधक भी अपनी जिज्ञासा पूर्ण कर सकते है । उनके साहित्यसे विद्वानोंकी क्षुधा भी तृप्त होती है और साधारण पाठकोंकी ज्ञान-पिपासा भी शान्त हो जाती है । उनकी युक्तियाँ बालक भी समझ सकता है ।"**[२']

उनकी कलमने विशेषत दार्शनिक, धार्मिक, एव सैद्धान्तिक विषयोंका विवरण एव विश्लेषण किया है, जो सामान्यतया अत्यन्त कठिन और शुष्क, गहन और मस्तिष्ककी कवायत स्वरूप माने गये है, फिर भी उनकी लचकदार-मधुर शैलीके कारण उनकी कृतियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई है, जिनकी दो-दो, पाच-पाच आवृत्तियाँ हुई । जिनसे प्रतिबोधित होकर कई जैनेतर साक्षर भी जैनधर्मके प्रति आस्थावान्, बने। जो एक बार पढना प्रारम्भ करे, वह उसे समाप्त करने पर्यंत उसे छोडनेका मन नही करता, और एक बार पढ लेनेके बाद बार-बार पढनेको ललचाता है किसी उपन्यास, तुल्य लोकप्रियता तत्कालीन समाजमे ऐसे दार्शनिक ग्रन्थोको प्राप्त होना वाकइ अपने आपमे विस्मयकारी घटना थी ।

इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओमे भौगोलिक-भूस्तरशास्त्रीय खगोलिक-वैज्ञानिक (जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञानादि), मनोवैज्ञानिक-पुरातत्त्व-ऐतिहासिक तथ्योकी प्ररूपणाये भी तत्कालीन नूतन सशोधन और आविष्कारोके आधार पर हुई है, जिनकी जानकारी उन्होने पाश्चात्य विद्वानोके ग्रन्थो, निवेदनो, पत्र-पत्रिकाओके लेखो, पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाईसे प्राप्त शिलालेखादि द्वारा प्राप्त की थी । वे अंग्रेजी भाषासे अनभिज्ञ थे, लेकिन

उसके ज्ञाता द्वारा उससे परिचय प्राप्त करके तद्विषयक जानकारी प्राप्त कर लेते थे । उस पर चिंतन-मनन-परिशीलन करके सारासारके विवेकयुक्त समीक्षा भी करते थे, और निष्कर्ष रूपमे जैन मान्यता एव सिद्धान्तोंके साथ तुलनात्मक रूपमे युक्तियुक्त वैज्ञानिक, ढगसे निरूपण करते थे । मथुराके ककाली टीलेकी खुदाईसे प्राप्त जैनधर्मकी समृद्धि और गौरवको प्रसिद्ध करनेवाली हकीकतसे परिचित उन महानुभावको बौद्ध पुरातत्त्व संबंधी अनुसंधानोंका भी ज्ञान था । अपने 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थमें आपने लिखा है–"अंग्रेजोने सांचीके स्तूपको खुदवाया, उसमेंसे मौद्गलायन और सारिपुत्रकी हकीकत निकली है, और उस डिब्बेके ऊपर इन दोनोंके नाम पालि अक्षरमें खुदे हुए हैं ।"[७१]

तत्पश्चात् जन कनिगहामने मथुरामे श्री महावीरकी मूर्ति प्राप्त की, उसे 'इतिहास तिमिर नाशक'के कर्ताने दो हजार वर्ष पुरानी मानी है इस तथ्यको गलत-भ्रमणा सिद्ध करते हुए स्पष्टीकरण दिया है "श्री महावीरकी प्रतिमा पर लेख है वह पालि हर्फोमें हैं, जो ढाई हज़ार वर्ष पहिलां जैनमतमें लिखी जाती थी अगर उनकी समझमें ऐसा होवे कि श्री महावीर अर्हतकी मूर्ति श्री महावीरसे पीछे बनी होवेगी इस वास्ते दो हज़ार वर्षके लगभग पुरानी है–यह अनुमान गलत है क्योंकि श्री ऋषभदेवके वखतसें ही होनहार तीर्थकारोंकी प्रतिमा बनानी शुरू हो गयी थीं–ऐसा जैन शास्त्रमें लिखते हैं । इस कालमें भी राणीजीके उदयपुरमें भावि उत्सर्पिणीमें होनहार प्रथम पद्मनाभ तीर्थंकरकी मूर्ति व मंदिर विद्यमान हैं । अतः वह मूर्ति बहुत पुरानी है ।"[७२] इस प्रकार हमे उनकी सूक्ष्म विवेचन शैलीका परिचय मिलता है । जैनधर्म विषयक अद्यतन समाचारोसे भी वे वाकिफ होते रहते थे । जिसका ब्यौरा हमे इससे आगे भी इसी ग्रन्थमे स्थान स्थान पर मिलता है ।

उनकी रचनाओके तलस्पर्शी अध्ययनसे ज्ञात होता है कि अपनी कृतियोको शब्ददेह देते वक्त भी उनके दिलमे अवश्य कई निश्चित धारणायें रहती होगी, जिनका जिक्र उन्होने स्वय भी कुछ स्थानो पर दिया है।-यथा-'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थ-प्रथम खड, श्री दयानदजीके मुख्य ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश'के प्रत्युत्तरमे; 'सम्यकत्त्व शल्योद्धार' ग्रन्थ- स्थानकवासी साधु श्री जेठमलजीके 'समकितसार'के प्रत्युत्तरमे 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' ग्रन्थ श्री रत्नविजयजी और श्री धनविजयजीकी तीन स्तुतिकी उत्सूत्र प्ररूपणाके प्रत्युत्तरमे, 'ईसाई-मत-समीक्षा' ग्रन्थ 'जैन-मत समीक्षा'के प्रत्युत्तरमे, 'चिकागो प्रश्नोत्तर' ग्रन्थ सर्व धर्म परिषद-चिकागो (अमरिका) की विनतीके उपलक्ष्यमे उनको प्रेषित करने हेतु, 'जैन तत्त्वादर्श' और 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' सस्कृत-प्राकृतसे अनभिज्ञ बाल जीवोकी जिज्ञासा-पूर्ति हेतु और उन्हे जिनशासनके सिद्धान्तोका परिचय करवानेके लिए, 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर' नूतन शिक्षा प्राप्त युवकोको जैनधर्मका सामान्य परिचय प्राप्त करवानेके लिए, चौबीस जिन स्तवनावली' अपने शिष्यकी इच्छा तृप्तिके कारण एव विविध पूजा-स्तवन-सज्झाय-पदादिका आलेखन अतरतममे बिराजित भगवद् भक्तिके प्रस्फुटन स्वरूप की गई है, जिसमे कभी समर्पण भाव, कभी उलाहना तो कभी करुणा सभर परमात्म प्राप्तिका तलसाट, कभी सिद्धान्तोका रहस्य तो कभी सुदर वर्णनोका चित्रण मिलता है ।

इन वैविध्यपूर्ण वाङमय निर्माणके अन्य प्रयोजनोका स्वरूप निम्नाकित हो सकता है, जिसे नजरअदाज नही किया जा सकता । यथा–अन्य धर्मोकी तुलनामे जैनधर्मके सच्चे स्वरूपको उसकी सर्वोपरिताके साथ ऐतिहासिक, आगमिक आदि प्रमाणो द्वारा वैज्ञानिक एव आन्वेक्षिक दृष्टिसे सदाशयी-अकाट्य तार्किकताके सहारे उनसे अनभिज्ञोके सम्मुख प्रस्तुत करना । तत्कालीन युगमे विश्वके जिज्ञासु पडितोमे, नाममात्रके विद्वानो द्वारा जैनधर्म विषयक वेवुनियाद प्रसारित की गई अनेक तरहकी गलतफहमियोको उनके सत् एव सत्य स्वरूपको प्रकट करके उन भ्रान्तियोका नीरसन करना साथ ही साथ जैनधर्म पर लगाये जानेवाले हास्यास्पद आक्षेपो तथा अन्यायी आक्रमणोको युक्तियुक्त नय-प्रमाणोके अवलबनसे खडित करना-उन असत्य अधकारको सत्यके सूर्यप्रकाशसे विदार कर नष्ट करना, निश्चय और व्यवहार मार्गकी–दोनोकी जीवनमे आवश्यकताको प्रतिपादित करना, मेकोलेकी अभिनव शिक्षा प्रणालीसे धर्म विमुख और उद्दड या विश्रृखल बने हुए युवावर्गको

निजी-आध्यात्मिक सस्कृतिका विकस्वर बाग और पाश्चात्य सस्कृतिकी आगका परिचय करवाना, साथ ही दोनोंकी तुलना पेश करके यथार्थ और उचित मार्ग पर स्थिर करते हुए अपने आध्यात्मिक ज्ञान सरोवरमें स्नान करनेके लिए युवापीढ़ीको आकृष्ट करना । जैनधर्मका प्रचार समस्त विश्वमे करके-करवाके भगवान महावीरके पद्यामृत रूप पद्यावारसे सारे ससारके मानवमात्रको लाभान्वित करना । सगुण-निर्गुण भक्तिकी यथोचित-यथावसर उपयुक्तताको प्रदर्शित करना ही प्रायः उनको अभिप्रेत था और जिसमें उनको सफलता भी प्राप्त हुई थी ।

इस प्रकार यह साहित्य सृजन यात्रा स १९२७ से प्रारम्भ होकर अविरत गतिसे दिन-प्रतिदिन प्रगति करते करते उनके जीवनके अतिम समय तक-स १९५३ तक-चलती रही, जब उनके प्राणोने देह त्यागा, तब उनके हाथोसे कलम छूटी । विश्व कल्याणकारी आचार्य प्रवरश्री हिन्दी भाषाके जैन वाङ्मय विश्वके प्रथम साहित्यकारके रूपमे प्रसिद्ध हुए । हिन्दी साहित्यके इतिहासमे गिने-चुने जैन साहित्य और साहित्यकारोका उल्लेख मिलता है जिनमे श्रीमद्विजयानद सुरीश्वरजी म सा का नाम भी चर्चित हुआ है जो आधुनिक कालके जैनाचार्यो एव श्री जैनसघके लिए गौरवकी बात है । आधुनिक खडीबोली हिन्दीमे गद्य-पद्य रचना करनेकी परम्पराकी नीव उन्होने डाली जिन पर अद्यावधि अनेकविध रचनाओके रूप-रग और रस हमे आह्लाद प्रदान कर रहे हैं-हमारा ज्ञानवर्धन कर रहे हैं ।

<u>*ऐतिहासिकता पर सर्चलाइट*</u>--इतिहास होता है प्राचीनकालकी तवारिख--भूतकालीन प्रसगोको साक्षिभावसे निरखते-परखते उनको वर्तमानकालमे आस्वाद्य बनानेवाला पुराख्यान । यही कारण है कि इतिहासका माहात्म्य प्राचीनकालसे अर्वाचीनकाल पर्यत अक्षुण्ण रूपमे अविच्छिन्नता सहित अनवरत गतिसे प्रवाहित होता रहा है-यथा-श्रीभद्रबाहु स्वामीने कल्पसूत्रमे इसकी महत्ताको इस प्रकार वर्णित किया है - **सेवि य णं दारए उमुक्कबालभावे विण्णाय परिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते रिउव्वेअ-जउवेअ-सामवेअ-अथव्वणवेअ-इतिहास पंचपमाणं णिघटुं छट्टठाणं संगोवंगाणं ..... सपरिणिट्ठिए भविस्सइ ।"**[७१] अर्थात् भद्रबाहु स्वामीने भी ब्राह्मण कुलानुसार चारवेदोके बाद ज्ञातव्य विषयके निरूपणमे पांचवें क्रम पर--इतिहासका जिक्र किया है जो जनजीवनमें इतिहासकी अत्यन्त उपयोगिताको ही स्पष्ट करता है ।

इतिहासकी अहमियतको 'राजतरगिनी'--हिन्दी अनुवाद--की प्रस्तावनामे प नदकिशोरजी शर्माने बडे रोचक ढगसे प्रस्तुत किया है, जिसे सक्षेपमे इस प्रकार पेश कर सकते हैं-यथा-"**इतिहाससे तद्तद् देशोंका अस्तित्व-गौरव-आचार-विचार-प्रकृति-धर्मादि जाना जाता है । इतिहासको दृष्टि समक्ष रखकर राजा प्रजापालनमें समर्थ, मंत्रीवर्ग सन्मति प्रदानकी क्षमतायुक्त और प्रजा स्वधर्म व कर्तव्यपालनमें दत्त-चित्त बन सकते हैं । इतिहास अंधकार युगको आलोक प्रदाता और देदीप्यमान वर्तमानका मार्गदर्शक होता है, क्योंकि उसीसे मनुष्य क्या था, क्या है, क्या होगा--का अंदाज़ लगाया जा सकता है । इतिहास लक्ष्यांधोंके लिए ज्ञानांजनशलाका, राजसी संनिपातकी घोर निद्रामें सोनेवालोंके लिए चंद्रोदय रस, रोगीके लिए राजवैद्य, घमंडी हकूमतदारोंके लिए परलोककी याद दिलवानेवाले विश्वकर्मा, रिश्वतखोरोंके लिए कालभैरव, अन्यायी शासकोंके लिए महारूद्र, बुद्धिमान राजाओंका सन्मार्ग रहनुमा सद्गुरु, राजनीतिज्ञोंका जीवन, पुरातत्त्व वेत्ताओंका सर्वस्व, कवियोंकी चातुरीका मूलस्रोत, राजाओंकी कीर्ति चंद्रिकाका चंद्र और बहुरत्ना वसुंधराके कालगर्भमें लुप्त नररत्नोंके विशिष्ट चरित्रोंका उद्घाटक सूर्य समान है । अंततः यही कह सकते हैं कि इतिहास एक अनगिनत प्रभाव रखनेवाला अनुपम चिंतामणी रत्न है ।"**

लेकिन मध्ययुगमे-मुस्लिम शासनकाल दरम्यान उस रत्न पर प्रमादाचरणके फलस्वरूप अज्ञानतावश मिट्टी छा गई थी। पुनःकाल परिवर्तनसे स्वातत्र्य सग्राम युगमे उस रत्नका चमकार दृष्टिपथ पर फैलने लगा था । प्राचीन सदर्भोके ऐतिहासिक आविष्कारोने दृष्टि परिवर्तन करवानेमे अपना प्रमुख योगदान दिया । उस युगके प्रभातकालमे बालरविकी प्रभाका प्रसार शनैःशनैः फैल रहा था, जब श्रीआत्मानदजी म अपने उत्तरदायित्वको निभाते हुए कदम कदम पर जिनशासनकी स्वर्णिम आभाको चमका रहे थे । यह बात उनकी सूक्ष्म प्रज्ञाके परिघसे परे न थी, कि, तत्कालीन ऐतिहासिक अनुसधानोके युगमे जैन वाङ्मयको

कैसा मोड देना यथोचित होगा । उनके प्रभावशाली व्यक्तित्वके रगका करतब अपन ग जमा रहा था। जैन साहित्यके-जैनधर्मके परपरागत इतिहासके अमूल्य निधिसे जन सामान्यकी अपरिचितता और अनभ्यस्तता स्पष्ट थे । उस धूमिल और धुंधले माहोलमें उन्होने अपने संविज्ञ सयम जीवनके प्रथम ग्रथराज *'जैन तत्त्वादर्श'*मे उन बातोको प्रकाशित किया। प्रथम परिच्छेदमे ही चौबीस तीर्थंकरोके विषयमे अनेकविध अवबोधका तालिका द्वारा बोध करवाया है, तो सप्तम परिच्छेदमे जैनधर्मके भौगोलिकादि अन्य विषयोकी प्ररूपणाओमे की गई शंकाओका उचित समाधान करते हुए जैन सिद्धान्तोका पुस्तकारूढ होनेका वर्णनादि प्रस्तुत किया है । अतिम एकादश और द्वादश-दोनो परिच्छेदमे भ.श्री ऋषभदेवसे भ.श्री महावीर स्वामी पर्यंत और भ.महावीर स्वामीके शासनकी पटट परपराका सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया है ।

"जैन मत वृक्ष" कृति पूर्ण रूपेण अपने आपमे एक अनूठी ऐतिहासिक रचना है जिसमे जैनधर्मका प्रारम्भ, प्रथमसे चरम तीर्थंकरोका इतिवृत्त, जैनेतर दर्शनोकी उत्पत्ति एव व्याप्तिकी रूपरेखाये, त्रेसठ शलाका पुरुषोके उल्लेख, अनेक प्रभावक आचार्यों एव महापुरुषोकी विशिष्टताये, भ.महावीरके शासनमे आर्य देशोके शासक राजाओकी परपरा आदिका अनुपम चित्रण किया गया है । इस प्रकारके वृक्षाकार चित्रपट स्वरूपकी अनूठी कलात्मकताके कारण वह अपने आपमे अपूर्व एव अद्वितीय कृति है ।

"अज्ञान तिमिर भास्कर" के द्वितिय खडमे भी जैनोके प्राचीन इतिहासान्तर्गत सात कुलकरादिसे लेकर गुजरता हुआ इतिवृत्त श्री ऋषभदेव, उनके पुत्र द्वारा चार आर्यवेद रचना, परवर्तीकालीन मनःकल्पित नूतन वेद रचना, मनुस्मृति आदि श्रुतियॉ-स्मृतियॉ-उपनिषदादि रचनाकाल वर्णन, हिंसक यज्ञोके प्रतिपादन करनेवाले वेदमंत्रोंके आविर्भाव, तेईसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी भ.के पश्चात् मौद्गलायन-सारिपुत्र-आनदादिके उल्लेख करते हुए भ.महावीर पर्यत पहुँचता है। भ. महावीर स्वामीके पूर्वके समयके धर्मशास्त्र न मिलनेसे जैनधर्म भ.महावीर जितना ही २५०० वर्ष ही प्राचीन है-इस मान्यताका नीरसन करनेके लिए पृ. १७४ मे वे लिखते है "जैन तीर्थंकर पूर्वजन्ममें बीस कृत्य (बीस स्थानक तप) करनेसे 'तीर्थकर नामकर्म'-नामक पुण्य प्रकृति उपार्जित करता है । उस पुण्य प्रकृतिके सुफल भोगनेके लिए तीर्थकरके पुण्योदयवाले जन्ममें धर्मोपदेश द्वारा धर्मतीर्थ प्रवर्तन करते हैं । जब वर्तमान तीर्थंकरका तीर्थ प्रवर्तमान होता है, तब उनके धर्मोपदेशानुसार शास्त्र-प्ररूपणा (द्वादशांगी आदिकी रचना) होती है-जिनमें सैद्धान्तिक तथ्योंमें पूर्व तीर्थकरोंसे कोई भी मतभेद नहीं-और पूर्वके तीर्थकरोंके शास्त्रोंका समापन कर दिया जाता है । इस परंपराके कारण अनादिकालीन जैनधर्मके सिद्धान्त शास्त्र, केवल ढाई हज़ार वर्ष ही प्राचीन प्राप्त होते हैं ।" इस प्रकार द्रव्यानुयोग और गणितानुयोगके सर्व विषय वे ही रहते हैं, केवल कथानुयोग और चरणकरणानुयोगमें वैविध्य पाया जाता है ।

*'तत्त्व निर्णय प्रासाद'*मे भी पूर्वार्धमे पूर्वाचार्योंके संस्कृत ग्रन्थोका सरल बालावबोध, वेद-स्मृति-पुराणादिमे निरूपित परस्पर विरोधी सृष्टि-सर्जनकी की गई प्ररूपणाकी समीक्षा, वेदकी अपौरुषेयताकी समीक्षा, 'गायत्री मत्र'के जैन-जैनेतर मताश्रयी अर्थ वैचित्र्य और जैन शास्त्राधारित सोलह सस्कार वर्णन किया है । लेकिन उत्तरार्धके अतिम पाच स्तम्भोमे जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिके लिए वेदपाठ, वेदसहिता, महाभारत-पुराण-आरण्यकादि धार्मिक ग्रन्थ एव व्याकरण-तर्कशास्त्रादि इतर ग्रन्थोके उद्धरण, जैनधर्मकी बौद्धधर्मसे प्राचीनता और स्वतत्रता—आदिकी ऐतिहासिक प्रमाणो द्वारा सिद्धि की है- जिसके अतर्गत विशद साहित्यिक ग्रन्थ प्रमाणोके अतिरिक्त आधुनिक सशोधनाधारित योरपीय विद्वानो हर्मन जेकोबी, मेक्समूलरादिकी रचनाये एव मथुरादि स्थानोकी खुदाईसे प्राप्त प्राचीन प्रतिमाओ पर लिखे शिलालेख-ताडपत्रीय ग्रन्थोके प्रमाण-तत्कालीन वर्तमानपत्र-पत्रिकाये आदिके लेखोको समाहित किया जा सकता है । चौतीसवे स्तम्भमे बाबू शिवप्रसाद सितारे हिंद-जैसे मेकोले-शिक्षणप्राप्त आधुनिक पडितोके मनमे, जैन शास्त्रोमे वर्णित प्राचीनतर कालकी विशिष्ट बाते-मनुष्यकी ऊँचाई-आयु-बुद्धि-बलादिकी उत्कृष्टता, जैन भूगोलानुसार वर्तमान भूगोलकी असमजसता, पृथ्वी-सूर्य चद्रादि खगोल विषयक प्ररूपणाये आदि—के बारेमे जो शकाये मचल रही थी, उनका भी पृ.६२५ से ६३५ तक विस्तृत भूस्तर शास्त्रीय सशोधन (जमीनकी खुदाईसे प्राप्त कुछ अस्थि पिंजरादि), पत्र-पत्रिकाओके लेख,

कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण और कुछ युक्तियुक्त तर्काधारित नीरसन किया है ।

इसके अतिरिक्त 'जैन-धर्म-विषयक प्रश्नोत्तर', 'ईसाई-मत-समीक्षा' आदि भी **अनेकविध ऐतिहासिक तथ्योंसे सजे हुए ग्रन्थ हैं** । इन ऐतिहासिक तथ्योके उद्घाटन करनेवाली रचनाओसे हमे तद्विषयक उनका अत्यन्त विशाल अध्ययन और मौलिक-विद्वत्तायुक्त चिंतनका एहसास मिलता है । युक्तियुक्त-शास्त्रीय-ऐतिहासिक प्रमाणोकी **टकसाल तुल्य आचार्य प्रवरश्रीके सदृश शायद ही अन्य किसी व्यक्तिको हम ढूंढ सके । श्री विनयचंदजीके शब्दोंमें** -'**All his life he passed in doing service to the community by writing useful works,** giving sermons, collecting manuscripts, studying scriptures and sacred books, . .. teaching his desciples and doing all he could do for the uplift and betterment of the society for which he dedicated his life."[64]

निष्कर्ष-(विविध विषयोकी अभिज्ञता)–

इस प्रकार आचार्य प्रवरश्री आत्मानदजीम सा के साहित्यका जैन समाज और जनसमाज अर्थात् समस्त ससारके जैनेतर जिज्ञासुओंकी दृष्टिसे अचिन्त्य-उपकृत निधिके रूपमे मूल्याकन करते हुए हम कह सकते हैं कि उन्होंने जन-जीवनोपयोगी विषयोका चयन करके साहित्य रचा अथवा यह भी सत्य है कि उन्होने जो कुछ भी रचनाये आगमाधारित या पूर्वाचार्योंके ग्रन्थाधारित की, वे जन जीवनको अनायास ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं । क्योंकि, लोक जीवन स्पर्शी विविध विषयोंके प्राय सर्वांगीण निरूपण करते हुए उससे उनका प्रतापी प्रभुत्व ही सिद्ध होता है । उनका प्रमुख प्रयोजन ही यही था कि जैन साहित्यका विविधरगी और विविधलक्षी प्रकाश समस्त विश्वमे फैले और 'सवि जीव करू शासन रसिक'की भावनाके साथ समस्त जीव जगत उससे लाभान्वित हो । अतमे श्री पृथ्वीराजजीके शब्दोंमे–"**यदि आप श्री आत्मानंदजी म.का वास्तविक रूप जानना चाहते हैं, उनकी अंतरात्माकी सच्ची और स्पष्ट झांकिका दर्शन करना चाहते है, तो वह आपको उनके ग्रंथोंमें ही हो सकते हैं..... विविध दृष्टिकोणसे** उनका साहित्य पठनीय है । जैन आचार, जैन विचार, **जैन इतिहास, जैन क्रियाकांड आदि सभी ज्ञातव्य विषयों पर उन्होंने तुलनात्मक प्रकाश डाला है । .....** जैन साहित्य रूपी गगनके प्रकाशमान नक्षत्रोंमें श्री आत्मारामजी म.का नाम अमर होगा ।"[65]

/

पर्व अष्टम

श्री आत्मानंदजी म.की अन्य विभूतियोंसे तुलना—

मंगलाचरण--

प्रस्ताविक--श्रीआत्मानंदजी म के साहित्य पर अन्य साहित्यकारोका प्रभाव–साहित्यिक रचनाये और रचयिताओकी परपराये–जिन शासनकी सरगमके सूर, जैन साहित्यिक रचना शैली

सूरि पुरंदर श्रीहरिभद्रजी म.सा.और सूरि सम्राट श्री आत्मानंजी म.सा.— श्रीहरिभद्रजी भट्टका परिचय–जीवनमे मोड–जैन साधुत्व अगीकार–आचार्य द्वयकी सम-विषम विलक्षणताये–उभय साहित्यिविदोके साहित्यका निरीक्षण–लेखनशैलीकी वैषम्यताके कारण

महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म.सा.और सविज्ञ आद्याचार्य श्रीमद् आत्मानंदजी म सा - परिचय–अतर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्याधारित जीवनतथ्य–दोनोकी तल्यातुल्यता–प्रभावकोमे हार्दिक साम्यता–उभयमे वैषम्य–साहित्यिक ना–भरपूर भक्ति, अखूट आस्था, दार्शनिकता, दीर्घदर्शिता–कलापक्ष (अलकार-प्रतीक बिम्बादि)का निरीक्षण–गद्य साहित्यका अवगाहन–निष्कर्ष

अध्यात्मयोगी श्री आनंदघनजी म.सा. तथा युगवीर आचार्य श्री आत्मानंदजी म.सा.—परिचय–श्री आनदघनजीका अत एव बहि साक्ष्याधारित जीवन तथ्य–पुण्य प्रकर्षसे प्राप्त लब्धि निष्पन्न चमत्कारोके परिवेशमे व्याप्त जीवन तथ्य–दोनोमे तुल्यातुल्यता-(जीवन परिस्थितियोमे और साहित्य विधाओमे, भावाभिव्यक्ति और अभिव्यंजना शिल्पके विभिन्न अंगोमे) छलाछल भक्ति–रस और अमूर्तभावोका नाटकीय ढगसे मानवीयकरण-दार्शनिकता-षट्दर्शन और जैनदर्शनके सिद्धान्तोकी प्ररूपणा-निष्कर्ष–

श्री चिदानंदजी म.सा. और श्री आत्मानंदजी म.सा.:- परिचय–जीवनतथ्य–तुल्यातुल्यता–श्री चिदानदजी म की विशिष्टतायें-साहित्यिक निरीक्षण–उभयके उपदेशप्रधान काव्योमे साम्य–वैषम्य–दोनोकी हार्दिक अभिलाषा-परमपदप्राप्ति

श्रीरामभक्त संत तुलसीदासजी और श्रीजिन चरणोपासक श्री आत्मानंदजी म.सा.:-परिचय-उभयके जीवन तथ्योमें साम्य-वैषम्य–तुलसीदासजीकी श्रद्धाको विचलित करनेवाले कारणोकी चर्चा, वैसे ही सयोगोमे श्री आत्मानदजीकी निश्चल आस्था-तुलसीकी उलझन-समष्टिकी उलझन-उभयके साहित्यका तुलनात्मक अनुशीलन-दोनोकी प्रीति और भक्ति (दास्य और सख्य भक्ति)–निर्गुण-सगुणकी परस्पर पूरकताके प्रमाण–प्रवाहित वात्सल्य रस–लोकमंगलकी भावनाके दर्शन–भावपक्ष और कलापक्षका निदर्शन–निष्कर्ष-

आर्यसमाज संस्थापक महर्षि दयानंद और संविज्ञ जैनाद्याचार्य श्री आत्मानंदजी म.सा.:—
तत्कालीन परिस्थितियॉं और उसके कारणोकी चर्चा–सत्यके ..षक-प्रचारक-प्रसारक, सत्यके मशालची युग प्रणेताओंका आविर्भाव-जीवनतथ्य-चारित्रिक महत्ता, ज्ञानार्जन और प्रातिभ व्यक्तित्व–धार्मिक प्ररूपणा और सैद्धान्तिक विचार, कार्यक्षेत्र–साथी–समाजादि परिवेशमे साम्य-वैषम्य पर विचार विमर्श उभयकी खडन मडनात्मक शैलीमे तरतमता-श्रीदयानदजीकी दुर्बलता और श्रीआत्मानदजीकी स्वस्थ श्रेष्ठताकी सोदाहरण स्पष्टता-निष्कर्ष-

साहित्यिक युगप्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चद्र और सामाजिक युगनिर्माता श्री आत्मानंदजी म.सा.:-
दोनो समकालीनोकी तुल्यातुल्यता–दोनोके साहित्यिक उद्देश्योमे वैषम्य–उभयके अतर्वेगो और अभिव्यक्तिमे साम्य-प्राचीन-अर्वाचीन युगके सधिकालके युगप्रवर्तक, सर्वतोमुखी प्रतिभावान दोनो साहित्यकारोका समाजोद्धारक, धार्मिकोत्कर्षक, युगनेताके रूपमे योगदान–गद्य-पद्यकी साहित्यिक भाषा-शैली आदिकी दृष्टिसे तुलनात्मक परिचय–भारतेदुकी भारत-दुर्दशाके लिए वेदना और श्रीआत्मानदजी म सा की जगत् दुर्दशा पर आत्म पुकार-श्री आत्मानदजी म की हिन्दी भाषा सेवा-निष्कर्ष-

पर्वकी परिसमाप्ति--